आर्य-सत्याग्रह

गुरुकुल की आहुति

के —

क्षितीश वेदालङ्कार

मूल्य आठ आने

भूमिका

१६ से २२ वर्ष तक की आयु के गुरुकुल विश्व-विद्यालय के ब्रह्मचारियों के जिस जत्थे द्वारा हैदराबाद-सत्याग्रह का श्रीगणेश और इतिश्री हुई, उसका ६ मास की आपबीती का रोचक किन्तु सत्य वर्णन पाठक अगले अध्यायों में पढ़ेंगे। इसके अतिरिक्त गुरुकुल के ब्रह्मचारियों तथा अन्य कुलवासियों ने जिस प्रकार उचित रीति से 'हैदराबाद-दिवस' मनाकर, अनेक सत्याग्रही-दलों और सर्वाधिकारियों का स्वागत करके, तथा अपने भोजन-वस्त्रादि के त्याग द्वारा एकत्रित रुपयों की भेंट देकर (भिन्न भिन्न समयों पर कुल मिलाकर ६०० रु०) जो अपने कर्तव्य का पालन किया वह गुरुकुल-प्रेमियों से छिपा नहीं होगा। किन्तु कुल से बाहर देश में दूर-दूर बिखरे हुए कुलमाता के वयस्क पुत्रों—अर्थात् स्नातकों ने इस यज्ञ में जो अपना भाग अर्पण किया है उसकी तरफ भी पाठकों का ध्यान आकर्षित कर देना अनुचित नहीं है। अति संक्षिप्त परिचय के साथ उनके नाम निम्न हैं—

(१) पं० विनायकराव जी विद्यालंकार बार-एट-ला हैदराबाद निवासी। पिता का नाम पं० केशवराम जी रिटायर्ड चीफ जज हाइकोर्ट हैदराबाद। स्नातक होने के बाद बैरिस्टरी पास की। हैदराबाद के माननीय हिन्दू-नेता। दक्षिण केसरी। अष्टम सर्वाधिकारी बनाये गये। २ जुलाई १६३६ को आप उत्तर भारत का दौरा करने हैदराबाद से प्रस्थित हुए। ३ जुलाई १६३६ को दिल्ली पहुँचे। भव्य स्वागत हुआ। दौरा ३ जुलाई को प्रारम्भ किया और १४ जुलाई १६३६ को समाप्त किया। इन १२ दिनों में युक्तप्रान्त के लगभग समस्त प्रमुख स्थानों का दौरा किया। ३० बड़े २ भाषण दिये। लगभग २२५० मील का भ्रमण किया। लगभग २ लाख जनता ने आपका भाषण सुना। १६५०० रु० एकत्रित किया। सब जगह स्वागत हुआ। विशेषतः देहरादून, सहारनपुर, फतेहपुर, मुजफ्फरनगर, बरेली तथा मेरठ में विशाल जलूस निकाले गये। मेरठ के जलूस में लगभग १५ हज़ार व्यक्ति सम्मिलित थे। आप अहमदनगर में अपने १६०० सत्याग्रही सैनिकों के साथ डेरा डाले हुए थे और २१ जुलाई १६३६ को सत्याग्रह के लिए प्रस्थान करने वाले थे परन्तु निज़ाम सरकार आपके सत्याग्रह को किसी भी तरह सहन न कर सकी। इससे निजाम सरकार के इस दावे को कि—यह सत्याग्रह बाहर वालों की ओर से चलाया गया है—

बहुत प्रबल धक्का लगता था। अतः उसने सन्धि चर्चा प्रारम्भ की। सत्याग्रह बन्द हो गया।

(२) पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार। आपने २ जुलाई १६३६ को २८२ सत्याग्रही सैनिकों के साथ मनमाड़ शिविर से सत्याग्रह किया। आप औरंगाबाद जेल में रखे गये। सत्याग्रहियों पर आपका नैतिक प्रभाव अत्यन्त अधिक था। जेल के नियमों की पाबन्दी तथा अहिंसा के सिद्धान्तों की रक्षा के लिये आपने बहुत ध्यान दिया। म० कृष्ण आपसे पहले पंजाब से ५०००० रु० ले जा चुके थे। परन्तु उनके बाद जब आप चन्दा लेने निकले, २५०००) आपने शीघ्र ही प्राप्त किया। यह आपके प्रभाव का एक छोटा सा उदाहरण है। आपके साथ लगभग ५०० सत्याग्रही जाने को उद्यत थे। परन्तु अधिकारी वर्ग की इच्छा का सन्मान करते हुए आपने सिर्फ २८२ सैनिक ही साथ लिये। दिल्ली, पंजाब तथा झांसी में आपका जिस तरह जनता ने स्वागत किया वह चिरस्मरणीय रहेगा। झांसी की जनता ने आपका राजाओं से भी अधिक स्वागत किया।

(३) पं० चन्द्रमणि जी विद्यालंकार। मालिक भास्कर प्रेस देहरादून। आप देहरादून से सबसे पहले ११ सत्याग्रहियों के साथ सत्याग्रह के लिए गये। १६ मार्च १६३६ को आपने हैदराबाद में सत्याग्रह किया। पुलिस के सतर्क सैनिकों से बचकर आप जिस कौशल से हैदराबाद में

प्रविष्ट हुए वह अत्यन्त सराहनीय था। आप सर्वप्रथम हैदराबाद जेल में रखे गये फिर अन्य कई जेलों में रहे।

(४) पं० सत्यानन्द जी विद्यालंकार। आप १६३६ में स्नातक हुए। अमृतसर के एक जत्थे के नायक बनकर आपने हैदराबाद में सत्याग्रह किया। अम्बाला तथा झांसी में आपका विशेष स्वागत किया गया। आपने पान गंगा के पास पुसद केन्द्र से सत्याग्रह किया तथा आप नान्देड़ जेल में रखे गये।

(५) पं० केशवदेव जी वेदालंकार—आपने भटिण्डा के एक सत्याग्रही दल का नेतृत्व करते हुए सत्याग्रह किया। आप औरंगाबाद जेल में रखे गये। जेल में आपने अत्यन्त धैर्य से कष्टों को सहन किया। वहां के कठोर व्यवहार तथा हानिकर भोजन के कारण आप जेल में ही बीमार हुए। यह बीमारी अब तक भी आपका पीछा नहीं छोड़ रही है।

(६) पं० जगन्नाथ जी पथिक—आपने त्रयोदश श्रेणी तक गुरुकुल कांगड़ी में शिक्षा प्राप्त की है। लारेन्स रोड आर्यसमाज की तरफ से हैदराबाद गये, २ जुलाई १६३६ को गिरफ्तार हुए और औरंगाबाद जेल में रखे गये।

(७) पं० केशवदेव जी उपाध्याय अर्थशास्त्र गुरुकुल कांगड़ी—आप श्री प० बुद्धदेव जी विद्यालंकार के जत्थे के साथ गिरफ्तार हुए, औरंगाबाद जेल में रखे गये।

(८) अनन्तानन्द जी आयुर्वेदालंकार— आप भी पं० बुद्धदेव जी के ही जत्थे के साथ थे। आप और पं० केशवदेव जी इतने चुपचाप गये थे कि जब तक ये गिरफ्तार नहीं हो गये तब तक कोई जान भी नहीं पाया।

शिविर कार्यकर्ता

(१) धर्मवीर जी वेदालङ्कार—आप रांची में म्युनिसिपल कमिश्नर थे। सत्याग्रह में भाग लेने के लिये आपने इस सम्मान को तिलाञ्जलि दी। बम्बई आदि स्थानों में आपने सत्याग्रह के लिए धन संग्रह किया। तदनन्तर प्रचार कार्य में लगे रहे। वहां से आप पुसद केन्द्र के सहायक अध्यक्ष बनाये गये। यहां से आप चांदा शिविर के अध्यक्ष बनाकर भेजे गये। योग्यता से कार्य किया। प्रबन्ध शक्ति प्रशंसनीय। २८-८-३९ को आपको चांदा नगरवासियों ने अभिनन्दन पत्र दिया। आपकी जेल जाने की बड़ी उत्कट इच्छा थी, किन्तु सभा ने प्रबन्ध-शक्ति का बाहर उपयोग उठाने के लिए इनको जेल के अन्दर जाने से रोक दिया।

(२) मदनमोहन विद्याधर जी वेदालंकार— आप बेजवाड़ा शिविरके सहायक-अध्यक्ष रह कर सत्याग्रह का कार्य करते रहे।

(३) धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति बंगलौर—मद्रास में जितना भी प्रचार हुआ, उस सब का श्रेय आप को है।

विदेश

(१) पं० सत्यपाल जी सिद्धान्तालंकार (नैरोबी)—

आप ने अफ्रीका-वासियों में सत्याग्रह आन्दोलन का बहुत प्रचार किया। इसी कारण वहां से लगभग १२००० रु० आन्दोलन के लिये भेजा जा सका। आप ने सभा को लिखा था कि 'मुझे सत्याग्रह के लिये अफ्रीका से भारत में आने दिया जावे।' आप के अनेक बार आग्रह करने पर भी सभा ने आप को स्वीकृति न दी।

प्रकाशन—विभाग

सत्याग्रह के आन्दोलन को तीव्र करने के लिये जिन समाचार पत्रों ने प्रशंसनीय कार्य किया उन में से (१) अर्जुन, (२) नवराष्ट्र तथा (३) हिन्दुस्तान के नाम सदा स्मरण रहेंगे। इनका सम्पादन क्रमशः (१) पं० रामगोपाल विद्यालंकार (२) प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति तथा (३) पं० सत्यदेव विद्यालंकार करते थे। आप

ही के उद्योग से इन पत्रों ने जनता को अत्यन्त जागृत करने में सफलता प्राप्त की।

(४) पं० विद्यानिधि सिद्धान्तालंकार ने सार्वदेशिक सभा के हिन्दी-प्रकाशन-विभाग के अध्यक्ष पद से प्रशंसनीय कार्य किया।

सार्वदेशिक सभा की तरफ से लिखा जाने वाला 'हैदराबाद सत्याग्रह का इतिहास' आप ही ने लेख बद्ध किया है।

(५) पं० जगन्नाथ जी वेदालंकार--आप ने गुरुकुल का काम छोड़ कर सभा में दो मास तक अवैतनिक रूप से सत्याग्रह के लिये कार्य किया।

स्थानीय कार्य

बदायूं में पं० धर्मपालजी विद्यालंकार पं० निरंजनदेव जी आयुर्वेदालंकार ने, कुरुक्षेत्र गुरुकुल में तथा जि० करनाल में पं०सोमदत्त जी विद्यालंकार ने, लाहौर में पं० प्रियव्रत जी विद्यावाचस्पति तथा पं० यशःपाल जी सिद्धान्तालंकार ने, बंगलौर में पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति ने,आर्य समाज करौल बाग दिल्ली में पं० हरिश्चन्द्र जी विद्यालंकार ने, गुरुकुल मटिण्डू हरियाणा प्रान्त में पं०निरंजनदेव जी विद्यालंकार ने, आर्य समाज सब्जी मण्डी दिल्ली की तरफ से पं० कृष्णचन्द्र जी विद्यालंकार ने, बम्बई

में पं० रामचन्द्र जी सिद्धान्तालंकार ने तथा सब से अधिक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के यशस्वी मन्त्री पं० भीमसेन जी विद्यालंकार ने हैदराबाद सत्याग्रह के लिये अहर्निश जागरूक रह कर कार्य किया। इनके अतिरिक्त दिल्ली में पं० सुधन्वा जी विद्यालंकार वैद्य का कार्य भी अत्यन्त प्रशंसनीय है जिन्होंने धन संग्रह के लिये विशेष उद्योग किया।

यह है पृष्ठ-भूमि—जिस पर अगले पृष्ठों में खींचे गये चित्र को यदि पाठक देखेंगे तो वे हैदराबाद-सत्याग्रह में गुरुकुल की आहुति के दृश्य को यथार्थ रूप से समझ सकेंगे।

—मुख्याधिष्ठाता

दो शब्द

जीवन एक लम्बी यात्रा है। उसका कुछ अंश भी एक छोटी यात्रा है। लिखते समय लेखक के मन में लगातार यही भाव काम करता रहा है। इस लिये यात्रा क सिवाय किसी अन्य दृष्टि-कोण से देखने वाले महानुभाव लेखक के प्रति अन्याय करेंगे। कई जगह आवश्यक छूट गया है, और अनावश्यक, अनावश्यक विस्तार पा गया है—उसका भी यही समाधान है।

जिन अक्षरों के नीचे उर्दू-व्याकरण के अनुसार बिन्दी होनी चाहिये उनके प्रति उपेक्षा के लिये हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का एतद्विषयक प्रस्ताव प्रेरक रहा है।

अधिकांश लेख 'गुरुकुल'-पत्र में निकल चुके हैं।

सहयोगियों के नाम से अपने आपको धन्यवाद देना उचित नहीं समझता !

गुरुकुल कांगड़ी
होलिकोत्सव.

—क्षितीश

इस प्रभात में—

सरल ओस के आंसू मेरे
साथी, हों स्वीकार !

साथ हमारे कभी खिले थे
इस उपवन की डाली पर,
सुषमा थी अभिराम तुम्हारी
झलक रहा था प्यार !

माली के हाथों ने तोड़ा
गूंथ लिया अपनी मालामें,
प्रथम देवता के चरणों में
तुम्हीं बने उपहार !
सरल ओस के.........!

—'सूर्यकुमार'

सत्याग्रही-बन्धु

[स्वर्गीय ब्रह्मचारी रामनाथ]

२८ जनवरी......

२८ जनवरी का दिन था—

अभी दो दिन पहले "वसन्तपञ्चमी" मना कर चुके थे। चारों ओर वसन्ती रंग के दर्शन किये थे–पुरुष में भी और प्रकृति में भी–जिस प्रकार छोटे छोटे ब्रह्मचारियों ने वसन्ती रंग की धोतियां पहनी थीं और उपाध्याय वर्ग ने वसन्ती रंग का दुपट्टा गले में डाला था उसी प्रकार प्रकृति भी पीत पुष्प-गुच्छ का परिधान पहन कर सजधज कर खड़ी थी।

उस दिन हमने शिवाजी, राणा प्रताप, गुरु गोविन्द सिंह जैसे महा पुरुषों को याद किया था, जिन्होंने प्रभु से प्रार्थना की थी-'मेरा रँग दे बसन्ती चोला'—और फिर न केवल स्वयं ही केसरिया बाना पहना था, किन्तु अपने असंख्य अनुयायियों को भी उसी रंग में सराबोर कर दिया था। और फिर एक आंसू उस वीर हकीकत राय की स्मृति पर गिराया था, जिसने धर्म की बलि वेदी पर अपने प्राणों की आहुति दे दी थी और अपने नाम के साथ इस पर्व को भी अमर कर दिया था।

उससे और दो दिन पहले २२ जनवरी को 'हैदराबाद-दिवस' मना कर चुके थे। उस सुदूर दक्षिण की मुस्लिम रियासत के अनेक अत्याचारों की, धार्मिक कृत्यों पर पाबन्दी की और नागरिकता के अपहरण की बड़े जोश के साथ हमने चर्चा की थी। और साथ ही सार्वदेशिक सभा की सत्याग्रह-घोषणा भी सुनी थी।

फरवरी मास के अन्तिम दिनों में विश्वविद्यालय की वार्षिक परीक्षा होने वाली थी। केवल एक महीना बचा था कि मैं भी अपने सहपाठियों के साथ स्नातक बनता—मेरे भी संरक्षक औरों की तरह सगे-सम्बन्धियों को प्रभूत संख्या में इकट्ठा करके वार्षिकोत्सव पर समावर्तन-संस्कार देखने आते और मैं अपनी एक माता की गोद से दूसरी माता की गोद में—कुल माता की संकुचित गोद से भारत माता की विस्तृत गोद में—जा पहुंचता। किन्तु ऐसा न होने पाया।

और अचानक ही २८ जनवरी को आर्य समाज के सर्व प्रथम सर्वाधिकारी श्री पूज्य महात्मा नारायण स्वामीजी का तार आ पहुँचा और सत्याग्रही सैनिकों का आह्वान हुआ।

आर्य समाज की प्राण-भूत संस्था से मांग की गई। हैदराबाद में आर्य-समाज पर संकट है। सेनापति ने बिगुल बजाया और इधर एक इशारे पर बलि-पन्थी

सिपाही कमर बांध कर तैयार हो गये। न भूत देखा न भविष्य। उसी रात को कुछ दीवाने चुपचाप अपने माथे पर कुंकुम का रक्त-तिलक लगा कर, पीयूषवाहिनी मन्दाकिनी का शुभ्र अञ्चल अपने अन्तिम नमस्कारों से अभिषिक्त करके, और चिर-अचल भारतीय संस्कृति के अमर संदेश वाहक वृद्ध पिता हिमालय के चरणों में अपना प्रणत प्रणाम कर उद्देश्य-पूर्ति के लिये गाड़ी पर बैठ गये।

उस समय की बात कह रहा हूं जिस समय इस विषय में समाचार-पत्र सर्वथा मूक थे, दुनियां के कानों को पता भी नहीं था कि यज्ञ की प्रथम आहुति चल पड़ी है!

दिल्ली पहुंचे। संरक्षक अपने बालगोपालों को इस अद्भुत रण-सज्जा के लिये कटिबद्ध देख कर विस्मित रह गये-"यह क्या! अभी तो समाचार-पत्रों में कोई खबर भी नहीं कि सत्याग्रह शुरू हो गया है! सब से पहिले तुम को कैसे भेज दें—जान बूझ कर आग की भट्टी में कैसे झोंक दें, उन नृशंस अत्याचारियों की रियासत में, जहां कोई 'उत्तरदायी शासन' नहीं है, जहां कोई धार्मिक सहिष्णुता का नाम लेने वाला नहीं है, जहां हरेक हिन्दू काफिर समझा जाता है और दिन-दहाड़े क़त्ल होते

रहते हैं—वहां यदि किसी ने चलते फिरते पेट में छुरा भोंक दिया तो क्या होगा ?"

"क्या होगा, यह तो हम नहीं जानते। हम तो केवल इतना जानते हैं कि हमारे सेनानी ने हमें बुलाया है और इस समय एक सच्चे सैनिक का कर्तव्य यही है कि वह बिना ननुनच किये चुपचाप अपने सेनापति के आदेश का पालन करें। आर्य समाज में हमने जन्म लिया है, उसी ने हमें पाला है और पुष्ट किया है और चौदह सालतक हम आर्यसमाज की एक-मात्र संस्था-गुरुकुलमें, शिक्षा पाते रहे हैं। फिर यह कैसे हो सकता है कि आज, जब कि आर्य-समाज पर सकट आया है—परीक्षा का समय है, तो हम पीछे हट जायें ! यह नहीं हो सकता। हमारा निश्चय अटल है। अब जो कदम आगे बढ़ गया वह पीछे नहीं हट सकता।"

घण्टों उपदेश—घण्टों वादविवाद। बड़े बड़े बुजुर्गों ने समझाया—"विद्यार्थी-जीवन तैयारी के लिये है। अभी देश को और समाज को तुम से बड़ी बड़ी आशायें हैं।" किन्तु सबका एक ही उत्तर—"हम नहीं जानते। हमें तो बुलाया गया है। सैनिक का काम सोच-विचार का नहीं है।"

और फिर तारों पर तारें—कोई गांधी जी को, कोई सभा के प्रधान को, और कोई किसी को, कोई किसी को।

पिता क्रुद्ध होगये—'कुपूत है, नालायक़ है, कहना नहीं मानता'—कह कर घर से निकाल दिया।

निश्चय फिर भी अटल रहा।

जब सबकी सुनी अनसुनी कर के, सब के सब शाम को ५ बजे स्टेशन पर पहुँच ही गये—तो मातायें रो पड़ीं, बहनें पछाड़ खा गईं और अन्य सम्बन्धी किंकर्तव्य विमूढ़ हो गये।

कोई स्वागत-सत्कार नहीं, कोई जलूस-प्रदर्शन नहीं, एक भी फूल की माला नहीं, और सब चुपचाप-क्योंकि ऐसा ही वह अवसर था और ऐसा ही सेनापति का आदेश था।

सार्वदेशिक सभा के मन्त्री श्री प्रो० सुधाकर जी ने विदाई दी, इञ्जिन ने सीटी दी और हम सब हाथ में एक थैला और कन्धे पर एक कम्बल लेकर मद्रास-ऐक्सप्रेस में चढ़ बैठे। गाड़ी चल दी। जो सगे सम्बन्धी स्टेशन पर छोड़ने आये थे वे जाने कितनी हसरत भरी निगाहों से, जाने कितनी देर तक, जिस दिशा गाड़ी में गई थी उसी दिशा में ताकते रहे!

× × ×

दिल्ली से पन्द्रह विद्यार्थियों का जत्था चला था। मेरे साथ जो अन्य चौदह विद्यार्थी थे उनके नाम निम्न हैं—

धीरेन्द्रकुमार चतुर्थ वर्ष, विद्यासागर ३यवर्ष, देवराज ३य वर्ष, सत्येन्द्र ३य वर्ष, ओम्मप्रकाश ३य वर्ष, इन्द्रसेन

३य वर्ष, विजयकुमार २य वर्ष, सतीश कुमार २य वर्ष, उदय वीर २य वर्ष, मनोहर २य वर्ष, रामनाथ २य वर्ष, विद्यारत्न २य वर्ष, चन्द्रगुप्त १म वर्ष और विश्वमित्र १म वर्ष।

पूरी रात और पूरा दिन—गाड़ी में। चौबीस घण्टे तक लगातार सफर—धूआं, कोयला और निरन्तर छक् छक् छक् छक् को कर्ण-कटुध्वनि—परेशानी। ३० जनवरी की शाम को ठीक ६बजे वर्धा के स्टेशन पर उतरे—हमने दिल्ली से बर्धा तक का टिकट लिया था, हैदराबाद तक सीधा जान बूझ कर नहीं लिया।

स्टेशन के पास ही श्री जमनालाल बजाज की धर्मशाला में ठहरे। चौकीदार ने पूछा—'कहां से आये हो?' बता दिया—'नागपुर से। पूछा—'कहां जाना है?' उत्तर में वर्धा से अगले स्टेशन का नाम ले दिया। शिक्षा-मन्दिर देखने गये—कुछ अवाञ्छनीय-सा इम्प्रैशन मन में लेकर आये।

रात की चांदनी में खुली छत पर मीटिंग बैठी—अच्छा, यहां तक तो बिना बाधा के पहुंच गये। अब आगे? सारी समस्या तो आगे ही है।......वेष बदल कर जाना पड़ेगा। पर १५ विद्यार्थी आखिर कौन सा वेष बदल कर जावें। परामर्श हुआ और फिर निर्णय हुआ। हरेक ने अपना वेष चुन लिया। और अगले दिन सबेरे ही धोती फाड़कर

अचकन और पजामे सिलवाये गये--तुर्की टोपी और हैट एवं अन्य तरह तरह की टोपियां खरीदी गईं। किसी ने कुछ किया, किसी ने कुछ। लेखक अचकन और तुर्की टोपी पहन कर पूरा मसलमान बन गया। एक साथी हैट पतलून पहन कर अंग्रेज बन गया। एक साथी सिर के जटा-जूट में कंघा अटकाये और हाथ में लोहे का कड़ा पहने 'सरदार जी' बन गये। एक महाशय रामनामी दुपट्टा ओढ़े, गले में माला डाले और माथे पर तिलक लगाये 'पंडित जी' बन गये। एक बड़ी तोंद की कुछ और बड़ा बनाकर, ढीलीर धोती बांध कर सेठ जी बन गये-और एक अत्यन्त मैले कुचैले कपड़े पहन कर गरीब-सी शकल बनाये 'सेठ जी के नौकर बन गये। जवाहर-कट कुर्ता पहन कर कोई सोशलिस्ट बना, और कोई गलकट कुर्ता पहन कांग्रेस-मैन। इस प्रकार यह बहुरूपियों की सेना ३१ की शाम को फिर वर्धा से आगे के लिये सवार हो गई।

और सवेरे से लेकर शाम तक यह दिन बड़ी व्यस्तता से बीता था। सवेरे २ वर्धा से ४ मील दूर सेगांव हो आये, फिर मगनवाड़ी और नालवाड़ी भी छू कर चले आये। और लेखक दुपहर की कड़ी धूप में श्री काका कालेलकर और दादा धर्माधिकारी के पास जाकर यज्ञ की इस प्रथम आहुति के लिये आशीर्वाद भी ले आया।

लगभग १० बजे का समय। बल्हारशाह स्टेशन से हैदराबाद रियासत की हद शुरुहोगई।

हरेक स्टेशन सुनसान! काली रात, काली वर्दी, काली शकल—सिवाय इन यमदूतों के स्टेशन पर और कोई नज़र ही नहीं आता। और ये यमदूत हरेक डिब्बे में जा जाकर झांकते हैं—कहीं कोई संदिग्ध व्यक्ति''' •

मै अपने दो तीन साथियों के साथ अन्त के डिब्बे में; चिन्ता के मारे नींद नहीं। इन यमदूतों के हाव-भाव से बेहद घबराहट। सब डायरी या नोटबुकें—जिनपर अपना नाम या 'गुरुकुल कांगड़ी' लिखा हुआ था, फाड़ फाड़कर फेंक दीं कहीं तलाशी न लें इसलिये।

इतने ही में एक स्टेशन पर एक यमदूत ने पुनः खिड़की के अन्दर झांका, आधी रात—और पूछा-"कहां जाना है?"

मैंने कहा—"सिकन्दराबाद"—और चुप हो गया।

चलते चलते—रेल में

वैसे तो ट्रेन में दिल्ली से एक सीधा हैदराबाद का डिब्बा लगता है। पर यदि हम उसमें बैठ जाते तो इसका अभिप्राय यही होता कि हम हैदराबाद जा रहे हैं। इस लिये जानबूझ कर ही हम दिल्ली से उस डिब्बे में नहीं बैठे थे, और जो हमने दिल्ली से वर्धा और वर्धा से सिकन्दराबाद का टिकट लिया था वह भी इसीलिये लिया था कि यदि सीधा हैदराबाद का टिकट लेंगे तो पकड़े जाने का अन्देशा है।

फलतः, काज़ीपेट में गाड़ी बदलनी थी। रात को तीन बजे गाड़ी काज़ीपेट पहुंची। साथी सब पैर पसार कर निश्चिन्तता के साथ सो रहे थे। पर यहां फ़िक्र के मारे नींद कहां? रह रह कर ख्याल आ रहा था कि हम किस अन्धकार की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं—कोई जान पहचान का नहीं, कोई संगी-साथी नहीं, कोई सहायक नहीं! चारों ओर, जहां तक दृष्टि जाती है, अन्धकार ही अन्धकार है। सचमुच हमने अथाह सागर के नील-वक्ष पर अपनी यह छोटी-सी नौका छोड़ दी है— कोई इसका मल्लाह नहीं, कोई इसकी पतवार नहीं, और किस दिशा में

जाना है यह भी कुछ पता नहीं।... पर यह सब सोचने का भी अवसर कहां है ?

साथियों को जगाया और थैला हाथ में लेकर डिब्बे से बाहर निकले। उस आधी रात की नीरवता में साथी आंखें मलते हुए मेरे साथ-साथ कुछ कदम आगे बढ़े। जिस डिब्बे पर 'हैदराबाद' लिखा था उसके सामने आकर ठिठक गये। इतने में पीछे से आवाज़ आई—"हां, यही डिब्बा है, चढ़ जाओ, चढ़ जाओ।" पीछे मुड़कर जो देखा तो हैरानी की हद न रही—वही काली वर्दी और काली शक्ल लिये यमदूत हमारा पीछा करता आ रहा है और अब हैदराबाद के डिब्बे के सामने ठिठकता देखकर आदेश दे रहा है कि चढ़ जाओ यही डिब्बा है। निश्चय ही उसने भांप लिया है कि हम हैदराबाद जा रहे हैं। अब क्या किया जाय ? चुपचाप बिना कहे सुने उस डिब्बे में चढ़ गये। कुल चार तो मेरे साथ थे ही—जब देखा कि हमारे इस डिब्बे में बैठ चुकने पर वह भी निश्चिन्तता से इधर-उधर भटक रहा है और उसका ध्यान हमारी ओर नहीं है, तो हम दो लड़के फिर उस डिब्बे से ग़ायब हो गये। लेखक तो गाड़ी के ठीक दूसरे छोर पर पहुंचा और एक डिब्बे में घुसकर चुपचाप खड़ा हो गया। खड़ा हो गया इसलिये कि कहीं बैठने की जगह नहीं थी। खचा-खच भीड़ भरी पड़ी थी और इस समय सबके सब यात्री

बेहोश हो कर सो रहे थे, कुछ ऊंघ रहे थे। यदि किसी को जगह देने के लिये जगाता और कुछ कहा सुनी हो जाती—क्योंकि सोकर उठा हुआ आदमी अपने आपे में कम रहता है—तो व्यर्थ में ही शोर मचता, और यदि कहीं बात बढ़ जाती—क्योंकि मुसलमान तो थे ही, और अक्सर मुसलमान बड़ी जल्दी गरम हो ही जाते हैं—तो प्लेटफार्म पर घूमने वाले यमदूत से फिर मुठभेड़ होती, और अपने राम इसी से बच बचकर निकलना चाहते थे।

थोड़ी देर बाद ही एक साथी दौड़ा दौड़ा आया और उसने भर्राये हुए गले से कहा—"जल्दी चलो, बुला रहे हैं। पुलिस आ गई है।" मैंने देखा कि उसकी भयभीत आकृति पर घबराहट के चिह्न हैं और वाणी में किंकर्तव्य-विमूढ़ता नाच रही है। इतना मुश्किल से बच-बचाकर वहां छिपकर खड़े हुए थे और अब जबकि हरेक का अपनी ज़िम्मेवारी अपने ऊपर थी और किसी न किसी तरह हैदराबाद पहुंचना ही हरेक का उद्देश्य था—फिर वह मुझे उस उद्देश्य से विचलित करने के लिये क्यों मेरे पास आया ? पर फिर स्थिति की गम्भीरता को देखकर मेरे मन में विचार आया कि जो लगातार चौदह साल तक एक साथ रहे हैं, एक साथ जिन्होंने खान-पान किया है और पाठ पढ़ा है, जो एक साथ खेले कूदे हैं और अब तक सुख में या दुःख में हमेशा एक साथ ही व्यवहार

करते आये हैं, वे अब अचानक ही अपने उस चिरन्तन अभ्यास को कैसे भुला सकेंगे और अपनी आपत्ति को अकेले कैसे सहार सकेंगे?

और फिर यह सोचकर कि चाहे कुछ भी क्यों न हो-रहेंगे तो सब साथ ही, और छोटी श्रेणियों में पढ़ी हुई एक कहावत—"Death with friends is a festival"—को याद कर मैं उसके साथ हो लिया और उसी हैदराबाद वाले डिब्बे के पास जाकर देखा कि उस डिब्बे को पुलिस ने चारों ओर से घेरा हुआ है।

जिस यमदूत ने इस डिब्बे में हमें चढ़ते हुए देखा था वह एक दम जाकर पुलिस इन्स्पेक्टर को बुला लाया। पीछे बचे हुए दोनों साथी घिर गये और उनसे कहा गया कि पहले अपने सब साथियों को यहां उपस्थित करो और अपने नाम तथा पूरे पते लिखवाओ।

इसी परिस्थिति में वह मुझे बुलाने गया था—क्योंकि वह स्वयं पुलिस को देखते ही घबरा गया था और निश्चय नहीं कर पाया था कि क्या करे—नाम और पते लिखवाये या न लिखवाये।

पुलिस इन्स्पेक्टर के डराने-धमकाने से वह अन्य भी सब साथियों को बुला लाया, और धीरे धीरे पूरे पन्द्रह के पन्द्रह वहां उपस्थित होगये।

पुलिस इन्स्पेक्टर ने कहा-"अपने नाम-पते लिखवाये।"

"क्या आप हरेक यात्री का नाम और पता लिखते हैं? इस डिब्बे मे और भी इतने यात्रा हैं, आप उनमें से किसी को जगाकर उसका नाम और पता नहीं पूछते।... और यदि आप परिचय ही चाहते हैं तो आप के लिये इतना ही काफी होना चाहिये कि हम सब 'स्टूडैन्ट्स' हैं और 'हिस्टॉरिकल टूर' पर जा रहे हैं।"

इस पर उसने तेज होकर कहा—"आपको अपने नाम और पते लिखवाने पड़ेंगे। जबतक आप नही लिखवायेंगे तबतक गाड़ी आगे नहीं जावेगी।"—और उसने सिपाही से इंजिन-ड्राइवर को बुलवाकर हमारे सामने ही कह भी दिया कि आज गाड़ी आगे नहीं जावेगी। हम देख रहे थे कि इस हुज्जतबाजी में गाड़ी आध घण्टा पहले ही लेट हो चुकी है। यह भी क्या विचित्र तमाशा है कि आज इनके कहने से गाड़ी भी आगे नही जायेगी! गाड़ी अपने घर की जो हुई!

और फिर थोड़ी देर रुककर उसने कहा-"और यदि आप तब भी नाम और पते नहीं लिखवायेंगे तो देखिये, यह है वारण्ट, आप को पुलिस इन्स्पेक्टर की हैसियत से मैं गिरफ्तार कर सकता हूं।"

हैदराबाद बिना पहुंचे और सत्याग्रह बिना किये ही गिरफ्तार हो जावें—यह तो हमें इष्ट नहीं था। इसलिये लाचार होकर नाम लिखवाने शुरु किये। लेखक ने अपना

नाम लिखवाया—खतीनचन्द और अपने बाप का लालचन्द। पूछा-कहां से आ रहे हो? कह दिया-वर्धा से। वहां क्या करते हो?-'नालवाड़ी' में पढ़ता हूं। फिर उस विद्यारत्न ने जो सिक्ख बिना हुआ था, अपना नाम लिखवाया, रतन सिंह और अपने बाप का नाम जोरावर-सिंह। इन्द्रसेन ने लिखवाया-तेजसिंह और हुक्म सिंह। सत्येन्द्रने-जो अंग्रेज बना हुआ था, लिखवाया-सेण्ट पौल और सेण्ट पीटर्स। कोई 'श्री भिक्षु' और कोई अखिलानन्द इत्यादि इत्यादि।

रहने का स्थान सबका अलग-अलग—कोई वर्धा में रहता है, कोई नागपुर में, कोई सी. पी. में, कोई यू. पी. में, कोई दिल्ली, कोई पेशावर। फिर उसी हिसाब से पढ़ते भी अलग-अलग ही हैं—कोई शिक्षामन्दिर वर्धा में कोई तिबिया कालिज दिल्ली में, कोई हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस में, कोई शान्ति निकेतन बोलपुर में, और कोई लखनऊ में, कोई हरिद्वार में। लिखते २ वे अपना सन्देह प्रकट करते जा रहे थे— बनावटी नाम समझकर, और इधर हमें मनमें हँसी आ रही थी। उनका ख्याल था कि उस्मानिया यूनिवर्सिटी से जो विद्यार्थी 'वन्देमातरम' गीत गाने के कारण निकाले गये थे और फिर नागपुर यूनिवर्सिटी में जाकर प्रविष्ट हुए थे, वे ही अब यूनिवर्सिटी छोड़कर सत्याग्रह करने आये हैं। उनके इस सन्देह का

कारण यह था कि हम नागपुर और वर्धा वाली लाइन से आ रहे थे। हम हरिद्वार से चलकर आ रहे हैं यह तो उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी।

इस तरह जब कहीं की ईट और कहीं का रोड़ा कागज पर नोट करके, भानमती अपना कुनबा जोड़ चुकी, तो गाड़ी चली। किन्तु गाड़ी चलने से पहले उन्होंने हमारे पूरे पंद्रह टिकट भी गिनकर अपनेपास रखनेके लिए मांगे। टिकट चैकर और गार्ड के हस्ताक्षर लेकर हमने दे देने में कोई हानि नहीं समझी। उनका डर था कि कहीं कोई रास्ते में ही न उतर पड़े!

दुःस्वप्न की-सी दुश्चिन्ताओं से भरी यह रात बीती। प्रातः ६ बजे सिकन्दराबाद स्टेशन पर उतरे। टिकट हमें लौटा दिये गये।

जब प्लेटफार्म से बाहर निकलने लगे तो हमारे दोनों ओर पुलिस थी और बीच में हम।

सिकन्दराबाद में दो रातें

हां, सिकन्दराबाद पंहुचे तो कहीं कोई जान-पहचान नहीं थी। पूछ-ताछ करके बड़ी मुश्किल से एक धर्मशाला का पता लगा- पुरुषोत्तम दास नरोत्तमदास की धर्मशाला- जो शायद सारे सिकन्दराबाद में सबसे बड़ी थी-में पहुँचे। उसके मालिक से ठहरने की जगह मांगी तो उसने कहा 'यहां कहीं जगह खाली नहीं है', बड़ा निराश होना पड़ा। असली बात थी यह कि उसके मालिक को शक हो गया था कि कहीं यह सत्याग्रही न हों--नहीं तो इतने नौजवान विद्यार्थी आजकल के दिनों में--जिन दिनों कहीं किसी कालिज का ग्रीष्मावकाश भी नही होता, इकट्ठे कैसे आते। इस लिए वे जगह देने को तय्यार नहीं हुए। और भी कई धर्मशालायें देखीं--कोई तो ठहरने लायक ही नहीं थीं, कहीं जगह ही नही थी और कहीं यह सोचकर कि ये सत्याग्रह करने आये होंगे--सबने जगह देने से इन्कार कर दिया। लोग डरते थे कि सत्याग्रहियों को ठहराया तो पुलिस हमारे पीछे पड़ जायगी और तंग करेगी।

इस आतंक को देख कर हैरानी हुई--देखा कि लोग बात भी इतने धीमे करते हैं कि कहीं कोई सुन न ले। यह तो स्पष्ट लगता था कि हरेक हिंदू के मन में हमारे प्रति

सहानुभूति थी, किन्तु अपनी सहानुभूति को किसी भी तरह वह क्रियात्मक रूप से प्रकाशित नहीं कर सकता था। देखा कि सड़कपर चलने वाले, जो हंस रहे हैं, खुश हैं, मस्त हैं और खूब शानदार कपड़े पहने हुए हैं—वे सब के सब मुसलमान हैं। किसी भी हिन्दू के चेहरे पर रौनक़ नहीं, खुशी का निशान नहीं। यद्यपि इस शहर की आबादी ७५% हिन्दू है, पर फिर भी यदि कोई हिंदू कहीं नजर आते हैं- तो वे हैं केवल दुकानदार, जो चुपचाप अपने आप को अपनी दुकान के वातावरण में ही सिकोड़ कर बैठे हुए हैं। लगता था कि एक ऐसा भय का राज्य चारों ओर छाया हुआ है जिसके कारण उनकी हँसी बाहर नहीं निकल सकती—कहीं हँसे कि एक दम पकड़े गये, मानों हँसना भी पाप हो!

आखिर उसी धर्मशाला के बरामदे में—जो खाली पड़ा था, ठहरने की स्वीकृति मिलगई। हमें भी कोई आपत्ति नहीं थी, क्योंकि सामान तो कुछ था नहीं। अपनी एकमात्र सम्पत्ति—कम्बल, कोने में पटक दिये। देखते ही देखते सी. आई. डी. के दो आदमी धर्मशाला के मुख्यद्वार पर दोनों ओर आकर बैठ गये, दो सड़क के ऊपर, और दो हमारे साथ ही अन्दर—हमारी हरेक क्रिया का निरीक्षण करने के लिए और प्रत्येक गति-विधि की जांच करने के लिए।

दुपहर को १० बजे हमें थाने में बुलाया गया। करीब घण्टे भर की प्रतीक्षा करने के बाद थानेदार साहब आये और हमारे नाम-पते पूछने लगे। हमने वही पुराने नाम जो कार्ज़ापेट में लिखवाये थे, लिखवा दिये। पूछा—किस लिये आये हो? कह दिया—सैर के लिये आये हैं। पूछा—कब तक ठहरोगे? कह दिया—तीन चार दिन सैर करके चले जायेंगे। थानेदार-साहब अपने असिस्टैण्ट के सामने हमारी सचाई के विषय में सन्देह प्रकट करने लगे—और उनके इस सन्देह पर मन में हँसते हुए हम वापिस धर्मशाला में लौट आये।

× × ×

एक मुश्किल और आ गई। हम दिल्ली से जितने रुपये लेकर चले थे वे सारे रुपये भी समाप्त हो गये। जान-पहचान किसी से थी नहीं—यह पहले ही कह चुका हूं। समस्या सामने थी—क्या किया जाये? समाधान कोई था नहीं।

अकस्मात् ही ध्यान में आया कि हैदराबाद में गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक श्री बैरिस्टर विनायकराव जी विद्यालंकार रहते हैं—उनके पास किसी तरह खबर भिजवाई जावे। इधर-उधर पूछताछ की तो पता लगा कि उनको जानते तो सभी हैं, क्योंकि वे स्टेट के सबसे बड़े कार्यकर्त्ता हैं, किन्तु उनके पास खबर पहुंचाई कैसे जावे? हमारे चारों

और सी. आई. डी. का पहरा है। हम एक क़दम भी धर्मशाला से बाहर नहीं रख सकते, किसी से बात नहीं कर सकते। तो फिर?

पान खाने के बहाने एक पनवाड़ी को अन्दर बुलाया और उसको तैय्यार किया कि वह हमारी चिट्ठी लेकर विनायकराव जी के पास पहुंचा दे। वह तय्यार हो गया। नौजवान था, हमारी चिट्ठी ली और साइकिल लेकर सीधा हैदराबाद पहुंचा—हैदराबाद वहां से चार मील दूर तो था ही। लगभग दो घण्टे बाद वह उसका उत्तर लेकर सकुशल वापिस आगया—लिखा था—'घबराने की कोई बात नहीं। अभी दो आदमी तुमसे मिलने आयेंगे वे सब प्रबन्ध कर देंगे।'

यथा समय वे दोनों आये। पान देने के बहाने पनवाड़ी अन्दर आया और बता गया कि वे दोनों आगये हैं, एवं इस समय पास वाले होटल में बैठे हैं। मैं भी उस होटल में पहुंच गया—तीनों ने चाय के प्याले मंगवा लिये, और चाय की ओट में बातें करने लगे। उनको बताया कि किस तरह यहां तक पहुँचे, और आगे क्या करें—यह हमें कुछ पता नहीं। हमारी परस्थिति अच्छी तरह समझ कर वे उसी दिन फिर रात को मिलने का वायदा करके लौट गये।

दिन कैसे गुजरा—कुछ कहा नहीं जा सकता। आपस में बात नहीं कर सकते—क्योंकि सिर पर सी. आई. डी. तैनात है। इधर उधर कहीं बाहर नहीं जा सकते—क्योंकि दरवाजे पर भी यमदूत बैठे हैं और सड़क पर भी। निरी उदासी-गम और भविष्य की कल्पनायें। मन इतना भारी हो गया जैसे कि उसमें उड़ने की शक्ति रही ही न हो—विचार-शून्य, जड़।

रात के ग्यारह बजे। सड़क की रोशनी से दूर—एक घना पेड़-नीचे अंधकार—न जाने कितनी गलियां घूम घूम कर मैं वहां पहुंचा था—कोई पीछा न कर सके इस लिये—वे दोनों फिर मिले। विचार-विनिमय हुआ कि किस तरह हैदराबाद पहुंचें और सत्याग्रह करें- कई स्कीमें बनी किन्तु हरेक में कोई न कोई दोष निकल आता। अन्त में अगले दिन के लिये स्थगित करके वे लौट गये।

अगला दिन। हमने सवेरे से ही शहर में घूमना शुरू कर दिया—पन्द्रह लड़के-कोई किसी ओर और कोई किसी ओर-इधर से उधर, उधर से इधर, कभी धर्मशाला एक दम बिल्कुल खाली, कभी एक दम सारे के सारे वहां उपस्थित। हमारी गति-विधि जांच करने वाले और हमारा पीछा करने वाले सी. आई. डी. के आदमी तंग हो गये। कहां तक पीछा करते-कब तक पीछा करते। उनकी ड्यूटी बदली, उनकी संख्या भी दुगनी हो गई—यहां तक क

एक एक लड़के के पीछे एक एक, किन्तु हमने निरुद्देश्य घूमना नहीं छोड़ा। शहर की सारी गलियां छान मारीं। एक-एक बार नहीं, बीस-बीस बार, फिर भी हम बिना थके घूमते ही चले गये। और इस घूमा-घूमी में लेखक एक साथी को साथ लेकर—वेष बदल कर—हैदराबाद पहुंचा—बैरिस्टर विनायकराव जी से मिल आया और सारा शहर घूम आया और देख लिया कि कहां सुलतान बाजार है, कहाँ आर्यसमाज है, कहां थाना है, कहां कहां पुलिस की चौकियाँ हैं-इत्यादि। आर्यसमाज में ताला लगा हुआ था। हरेक मुख्य मुख्य सड़क के हरेक मोड़ पर सङ्गीन-बन्द पुलिस की चौकियां पड़ी थीं, जहां से किसी भी संदिग्ध और अपरिचत आदमी का जाना खतरनाक था। और इस खतरे को हमने इतनी आसानी से पार कर लिया कि मन में हँसी आ रही थी।

शाम को जब साथियों ने हम दोनों को सकुशल वापिस लौटा हुआ पाया तो उन्हें तसल्ली हुई—उन्हे डर था कि कहीं ये गिरफ़्तार न हो जायें।

फिर बैठकर कुछ चिट्ठियां गुरुकुल को लिखीं, कुछ घर को लिखीं और एक महात्मा गांधी को लिखी कि एक तो हिन्दुस्तान की रियासतों में वैसे ही अन्याय और अत्याचार का बोलबाला है, उसपर यह निज़ाम हैदराबाद तो साम्प्रदायिक पक्षपातों में बाक़ी सब रियासतों को पार कर

गया है, यहां की जनता जानती ही नहीं कि नागरिक स्वतन्त्रता किसे कहते हैं—ऐसे कठिन समय में स्टेट-कांग्रेस का सत्याग्रह बन्द करवा कर क्या आपने उचित किया है ?—इत्यादि। और यह सब चिट्ठियां भी बड़ी तिगड़म बाजों से लैटरबक्स में डलवाईं।

× × ×

सिकन्दराबाद में दो रातें ऐसी बीती जैसे किसी जासूसी उपन्यास की घटनाएं हों।

गिरफ्तार हो गये

समय स्वयं एक बड़ा भारी उपचार है। जब क्षण-क्षण चिन्ता-व्याकुलता और किंकर्तव्यविमूढ़ता से भरी दो पूरी रातें उस सिकन्दराबाद की धर्मशाला में काली हो चुकीं, तो उस कालिमा में से स्वयमेव प्रकाश की झलक आने लगी। जिस विभीषिका का पर्दा आंखों पर छाकर मन में दुविधाओं की सृष्टि कर रहा था, वह स्वयमेव खिसकने लगा। अपने कार्य में अचल और चतुर गुप्तचरों के कारण हमें डर था कि कहीं हमें अपने उद्देश्य की सिद्धि में विफलता न हो, क्योंकि वे हमारी प्रत्येक गति-विधि का निरीक्षण करते थे और ऊपर रिपोर्ट पहुँचाते थे। इन दो दिनों के अन्दर उनकी ड्यूटियां कई बार बदल चुकी थीं, क्योंकि हमने भी उनको कोई कम परेशान नहीं किया था। सवेरे से निकलते और शाम तक लगातार घूमते ही रहते-कभी इस गली और कभी उस गली- सारी गलियां छान डालीं। और मजा यह कि हरेक अलग २ जाता था। वे भी विचारे पीछा करते करते परेशान हो गये। किस किस का पीछा करते!

तीसरे दिन सूर्योदय होने से पहले ही भाग्यनगर के घर-घर में छोटी-छोटी चिटों पर साइक्लोस्टाइल से छपी हुई गुप्त विज्ञप्तियां पहुंचा दी गईं कि आज शाम को ४ बजे गुरुकुल-कांगड़ी के १५ विद्यार्थियों का एक जत्था सुलतान बाज़ार के चौक में सत्याग्रह करेगा। लोग हैरान रह गये कि अकस्मात् ही यह क्या हो गया! किसी ने उन विद्यार्थियों को देखा नहीं, किसी ने उनके विषय में सुना नहीं कि स्टेट में आ भी गये हैं या नहीं। फिर अचानक ही भारतवर्ष के ठीक उत्तर से इस इतनी दूर दक्षिण में एक दम शाम को कैसे टपक पड़ेंगे! लोग यह भी नहीं जान पाये कि वह कौन सा चिड़िया था जो दुनियां की आंखें खुलने से पहले ही घर घर में यह अनहोनी ख़बर बांट आई। काश! निज़ाम-राज्य के दिल—ख़ास हैदराबाद शहर में, मकड़ी के जाले की तरह बिछा हुआ वह गुप्तचरों का जाल उस चिड़िया को पकड़ पाता!

लोगों को ग़लतफ़हमी हो जाती है, वे अपने आप को परले सिरे का चालाक समझने लगते हैं। पर उन्हें पता नहीं कि कभी कभी सेर को सवासेर से भी पाला पड़ता है।.........तीन बजे के लगभग एक मोटर मारुति-मन्दिर के पीछे आकर खड़ी हो गई, न जाने कहां से! किरात गजियों की घुम्मरघेरी के बीच

में था वह देवालय । सामान्य जनता की दृष्टि से दूर और सी० आई० डी० की दृष्टि से तो और भी दूर! धीरे धीरे एक एक कर के पांच आदमी आये—न जाने किस रास्ते से, और आकर उस मोटर में चढ़ गये। मोटर भी हरेक मोड़ पर पुलिस नाके को बचाती हुई न जाने किस किस सड़क पर होकर पांच बजते बजते सुलतान बाजार के सिरे पर जाकर रुक गई। उसमें से निकले पांच वीर—जैसे कि गुरुगोविन्द सिंह ने अपने हाथ से रक्त-तिलक लगाकर सबसे पहले 'पांच सिक्ख' तैयार किये थे—आर्य-जागृति के इतिहास में अमर बन कर जिन्होंने सिक्ख जाति का पथ प्रदर्शन किया था। किन्तु...

किन्तु इनके माथे पर तो कोई रक्त-तिलक नहीं हैं, इनके वेष में तो कोई विशेषता नहीं है ?... हां, ये ऐसे ही वीर हैं—इनके वेष में या बाह्य किसी चीज में कुछ भी विशेषता नहीं है। जो कुछ विशेषता है वह इनके अन्दर है। जरा अन्दर घुसकर देखो—देखो, वह रहा लाल लाल रक्त-तिलक .....नहीं, लाल चिनगारी—छोटो सी चिनगारी उस महा ज्वाला की, जो इनके अन्दर लगातार जल रही है। आवें—अन्याय और अत्याचार अपनी सेना के साथ सजधजकर इसको बुझाने के लिये आवें-

और फिर देखें कि इस ज्वाला में पड़कर वे ज्वाला को बुझाते हैं या आप बुझ जाते हैं !

दो फ़रवरी—इन्द्रसेन, विद्यारत्न, मनोहर, उदयवीर, और विश्वमित्र गिरफ्तार हो गये । उस दिन और मोटर का प्रबन्ध नहीं हो सका, इस लिये हम नहीं जा सके। सोचते रहे रात भर—अपने उन सौभाग्यशाली बन्धुओं के विषय में, जिन्होंने भाग्यनगर में जाकर अपने भाग्य के साथ जूआ खेला था—हमसे पहले—सबसे पहले !

और फिर तीन फरवरी—दिन भर घूमना तो काम था ही—निकल पड़े। दुपहर को खूब डटकर भोजन किया—फल भी, मिठाई भी—खूब; न जाने फिर कब नसीब हो। होते होते बलि का समय निकट आगया। पांच पांच के दो ग्रुप बनाये—लेखक ने एक अपने साथ रखा और दूसरा अपने सहपाठी धीरेन्द्र के साथ । सारा पुरोगम तैयार कर लिया—कि किस तरह बिना एक भी शब्द बोले इशारे मात्र से सारे काम करने हैं।

आवश्यक वेष-परिवर्तन किया। किन्तु अब इस नये वेष में दरवाजे से बाहर कैसे जावें—वहां सी. आई. डी. के रूप में यमदूत बदस्तूर कायम हैं।

धर्मशाला के पीछे के चोरद्वार से एक एक करके निकले । सारा सामान वहीं छोड़ा। सूई की नोक में से दोनों का निकलना मुश्किल था। एक ग्रुप पहुंचा रानीगंज और दूसरा स्टेशन, क्योंकि मोटरों के यहो दो अड्डे थे । वे हमारे सरकारी पहरेदार वहां न जाने कब तक बैठे रहे होंगे !

सुल्तान बाजार में जाकर उतरे तो देखा कि दूसरा ग्रुप हमसे पहले पहुंचा हुआ है, और हर एक साथी भीड़ में ऐसा गायब हो गया है कि ढूंढना मुश्किल। और भीड़ ?-उसका कुछ न पूछो--सड़क पर, दुकानों पर, छज्जों पर और छतों पर--चारों ओर नरमुण्ड-ही नरमुण्ड। घुड़सवार पुलिस भी तैनात है और बड़ी मुस्तैदी से थोड़ी थोड़ी देर बाद भीड़ को तितर-बितर करने के लिये लाठी-चार्ज कर रही है। पर तमाशा! भीड़ फिर भी लगातार बढ़ती ही चली जा रही है। पुलिस हैरान है कि अकस्मात् ही इतना मजमा कैसे इकट्ठा हो गया !

सारे बाजार में एक बार घूमकर सब साथियों को निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचने का इशारा किया। सब इसी की इन्तिजार में तो थे ही, क्षण भर में इकट्ठे हो गये। बीच--बाजार--चौक--सामने टावर--घुड़सवार और

संगीन-राईफलों से सुसज्जित सिपाही।......जैसे किसी ने बिजली का स्विच दबा दिया हो—

"जो बोले सो अभय—

"वैदिक धर्म की जय !"

"आर्यसमाज जिन्दाबाद !"

—और इन गगनभेदी नारों की प्रतिध्वनि जनता में गूंज उठी।

फर्र-फर्र-फर्र निकर और पजामों की जेबों में छिपे हुए पर्चे निकल पड़े। जनता में लूट मच गई। उसमें लिखा था : "काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक सारा हिन्दुस्तान एक है। सांस्कृतिक दृष्टि से उसके दो भाग नहीं किये जा सकते। उसके एक अंग पर किये गये अत्याचार से यह सारा का सारा आर्यावर्त कराह उठा है।......जब तक हमें नागरिक और धार्मिक अधिकार नहीं मिलेंगे, हम अन्तिम दम तक लड़ते चले जावेंगे......"

पर यह सब पढ़कर सुनाने का मौका भी कहां था! सामने से घुड़सवार दौड़ पड़े। संगीनें तान ली गईं और आकर जबर्दस्ती मुंह बन्द कर दिये गये।

× × ×

जब गिरफ्तार करके थाने की ओर ले चले तो हजारों की भीड़ साथ चली!

जेल की ओर

"अच्छा आप सब तालिबे-इल्म (विद्यार्थी) हैं। कहां पढ़ते हैं?"

"गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार।"

"हैं! इतनी दूर से आ रहे हैं! समझ में नहीं आता कि आप लोग पढ़े-लिखे समझदार होकर फिर इतनी दूर से इस फालतू काम के लिये क्यों आये? कोई अनपढ़ बेवकूफ हो तो उसको आसानी से बहकाया जा सकता है, किन्तु आश्चर्य है कि आप 'कॉलिज स्टूडेण्ट' होकर भी कुछ लोगों के बहकावे में आगये"—अमीन-साहब ने अपनी ओर से बड़ी समझदारी दिखाते हुए कहा।

"आपके इस उपदेश के लिये धन्यवाद। परन्तु क्योंकि हम पढ़े लिखे हैं और समझदार हैं, इस लिये किसी के बहकाये में नहीं आसकते, और इसीलिये जान-बूझकर कर आये हैं। यदि पढ़े-लिखे न होते तो शायद यहां आने की बेवकूफी भी कभी न करते। आप अपना काम करिये, हमने अपना काम किया है।"

हमें बेंच पर बैठाकर थाने में अमीन साहब यों बड़ी सभ्यता से सवाल-जबाब कर रहे थे। हम बड़े हैरान थे कि पुलिस के अफसर इतनी सभ्यता से बात करते हैं।

परन्तु अगले ही क्षण—

एक पूरा साढ़े सात फीट का लम्बा-चौड़ा जवान हाथ में हण्टर लिये हुए आया। अमीन साहब सवाल जवाब करते करते जाने किधर खिसक गये। उस जवान ने दरवाजे में घुसते ही फुलझड़ी की तरह मुंह से वह बौछार छोड़ी—गालियों की—इतने सुन्दर शब्दों में, कि उन शब्दों का प्रयोग यदि Anatomy के बाहर कहीं भी किया जाय तो सभ्य-समाज दांतों तले अंगुली दबा लेगा। और फिर न केवल गालियां-बल्कि हाथ के हण्टर का भी ऐसी बेरहमी की करामात से प्रयोग किया जाने लगा कि रूह कांप उठी। यह क्या? कहां तो अमीन साहब ने आदर से बेंच पर बैठाया था और 'आप-आप' करके बातें कर रहे थे, और कहां यह साक्षात् यमदूत बिना बात के ही गाली देता हुआ, हण्टर मारता हुआ, और जो ज़रा सी आनाकानी करे उसे गर्दनिया देकर बूट की ठोकर मारता हुआ ज़बर्दस्ती ज़मीन पर बैठा रहा है।

शिक्षा का और यौवन का यह अपमान! नहीं सहन हो सकता—नहीं, हरगिज़ नहीं। ··पर क्या तुम्हें याद है कि तुम सत्याग्रही हो, अहिंसा के व्रत के व्रती। तुम्हें हिंसा नहीं करनी है—स्वप्न में भी नहीं। सहना होगा, सब चुप-चाप,—और अपना हाथ नहीं उठाना है।

रात को आठ बजे लारी में बन्द किया—हरेक के साथ एक-एक संगीन-राइफल से लैस सिपाही। लारी चारों ओर से बन्द—मानों बुर्कापोश ······!

हवालात में पहुंचे। सब को पंक्ति में खड़ा किया गया। केवल एक कपड़ा पहने रहने दिया, बाकी लंगोट तक सब कपड़े उतरवा लिये। कोई भी चीज़ पास नहीं रहने दी—कागज़ पेंसिल, रुपया-पैसा कुछ भी नहीं। फिर खाना-तलाशी शुरु हुई—मुंह खुलवा कर, हाथ ऊपर को उठवा कर और फिर गुप्ताङ्गों में भी क्या छिपा कर रखा होगा !

फिर एक एक करके जो कोठरी में धकेलने वाला सिपाही था, उसने पहले ही व्यक्ति भाई सतीश की अन्दर बन्द करने से पहले फिर तलाशी ली, और गले में डले हुए उस तीन तार के यज्ञोपवीत को एक झटके में तोड़ डाला। अरे ! वह देख, हिन्दुत्व की एक-मात्र निशानी वह यों छिन्न-भिन्न की जा रही है और तू खड़ा-खड़ा देख रहा है ! बोल, क्या अब भी तेरी अहिंसा तुझे चुपचाप खड़ा रहने को कहती है ?

शिखा का कोई आदर न करे तो यह सहा जा सकता है, यौवन को भी यदि कोई उचित मान न दे तो यह भी सहा जा सकता है; किन्तु नहीं सहा जा सकता—आर्यत्व का अपमान नहीं सहा जा सकता ! जिस यज्ञो-

पवीत की रक्षा के लिये राजपूतों का इतिहास रक्त से आप्लावित हो उठा है और अपना सर्वस्व गंवा कर भी धर्मप्राण पूर्वजों ने जिस की रक्षा की है, क्या उस वेदोपदिष्ट आदर्श के मूर्तरूप यज्ञोपवीत को हम इस प्रकार टूट जाने देंगे !

तन कर खड़े हो गये—हम तलाशी नही देंगे।......

× × × और तब उन्हें हार माननी पड़ी-यज्ञोपवीत नहीं तोड़ा जायगा। टूटा हुआ लौटा दिया गया।

सबको एक कोठरी में बन्द कर दिया। उन दिनों सर्दी थी—ओढ़ने-बिछाने के लिये केवल तीन कम्बल से कैसे काम चलेगा ? नौ आदमी, तीन कम्बल, क्या ओढ़ें— क्या बिछायें ?

किसी तरह सोये। मन में खुशी थी कि इतनी दूर से जिस काम के लिये आये थे आज वह पूरा हो गया अब कोई गुप्तचर हमारे पीछे नहीं है—अब कोई दुविधा नहीं है कि किस तरह उनको धोखा देना होगा—किस तरह हैदराबाद में घुस कर सत्याग्रह कर सकेंगे—इत्यादि। परन्तु केवल एक चिन्ता है और यह चिन्ता ही इतनी भारी बन कर पड़ रही है कि चैन नहीं लेने देती। हमारा एक भाई चन्द्रगुप्त—जो किसी कारण हमारे साथ गिरफ्तार नहीं हो स ा—कहां जायगा ! उसका क्या होगा !

४ जनवरी। दुपहर को १२ बजे कोठरी में से बाहर निकाला। बीच में एक बार छोटी २ दो-दो पूरियां भी दी गई थीं, पर वह पेट के किस कोने में चली गईं-यह बड़ी कोशिश करने के बाद आज भी नहीं पता लगा।

फिर लारी में बन्द किया—वही संगीन और राइफलें साथ।

नाज़िम साहब अभी सो रहे थे। घण्टा-भर से ज़्यादह इन्तज़ार करनी पड़ी। वहीं बैठ कर वारण्ट तय्यार किये गये। उस से पहले दिन हवालात में रात को बारह बजे उठा उठाकर हमारे बयान लिये गये—हरेक को लगभग दो-दो घण्टे तक व्यर्थ के सवालों का जवाब देने के लिये माथापच्ची करनी पड़ी थी। फिर सवेरे ही सवेरे एक और साहब आये थे जो हरेक के शरीर की ख़ास ख़ास निशानियां और शक्ल-सूरत का पूरा हुलिया लेकर गये थे। अब यहां नाज़िम साहब की कोठी पर फिर वही सब का सब दुहराया गया। फिर झड़ती (खाना तलाशी) ली गई। और जब नाज़िम-साहब अपनी दुपहर की नींद समाप्त करके उठे तो उनके सामने पेश किया गया—वारण्टों के साथ हम सबको।

जब उन्होंने उर्दू-ग्रामर के अनुसार शब्दों के बहुवचनों का हमसे सवाल करते हुए प्रयोग किया तो हमारे लिये अपनी हँसी रोकना मुश्किल हो गया और हम

खिल खिला कर हँस पड़े। पीछे खड़े हुए सिपाही चिल्लाये—'शी ! शी' !; पर हमारी हँसी रुकने में नहीं आती थी—कोई अफसर होगा तो अपने घर का होगा, हम तो हँसी की बात पर बिना हँसे रह नहीं सकते।

प्रश्नोत्तर के बाद जब उन्हें पता लगा कि ये उस संस्था से आये हैं जिसके संस्थापक अमर शहीद श्री स्वामी श्रद्धानन्द थे, तो उनके कान खड़े हो गये।

पूछा—"ज़मानत दोगे ?"

"नहीं।"

"माफीनामा लिखोगे ?"

"हरगिज़ नहीं।"

तो उसने चुपचाप हमारे वारण्टों पर लिख दिया—'भारत के इन वीरों को उचित दण्ड दिया जाये।' और अदालत में पेशी की तारीख भी लगा दी।

भारत के वीरों को उचित दण्ड देने के लिये ले चले जेल की ओर !

चंचलगुडा

चञ्चलगुडा—हैदराबाद की सेण्ट्रल जेल।

मुग़लकाल के किलों का सा भारी भरकम द्वार। उसमें एक छोटी सी खिड़की। एक एक करके अन्दर घुसे। लम्बा चौड़ा डील डौल, लम्बी काली दाढ़ी, विचित्र वेष, हबशियों की सी कालिमा—जिसे देख कर भय का सञ्चार हो--ऐसा था पहरेदार। उसने मेघ-गम्भीर स्वर में अपने कर्ण-कटु कर्कश कण्ठ से गिनना शुरु किया--ओकटि, रेण्डु, मूड़, नालगु (एक, दो, तीन, चार)''''''तोम्मदि—पूरे नौ।

पहले कभी जेल के द्वार के अन्दर की दुनियां को देखने का सौभाग्य नहीं मिला था। हम प्यासी आंखों से ऊपर नीचे, इधर उधर ताकने लगे। दीवारों पर धूल। छत पर मकड़ी के जाले, सामने के बोर्ड पर एक पंक्ति में बड़े बड़े ताले टंगे हुए—नम्बर लगे थे, ऊपर लिखा था—'डे लॉक्स' (Day Locks) दूसरी ओर 'नाइट लॉक्स' (Night Locks)थे। जिस प्रकार आदमियों की ड्यूटियां बदलती रहती हैं—किसी की दिन में किसी की रात में—उसी प्रकार इन जड़ तत्वों की भी बदलती रहती हैं।

अच्छा ही है! मशीन की तरह मनुष्य से काम लेकर यह युग मनु की सन्तान को जड़ बनाता जा रहा है, तो जड़ चीजें भी पीछे क्यों रहें— वे दिन और रात में अलग अलग ड्यूटियां बदल कर मनुष्य की तरह काम करेंगी!

कोने में एक ओर, द्वार के पास ही एक बड़ा सा रजिस्टर। एक आदमी उसमें लगातार कुछ घसीटता जा रहा था। बारी बारी से हमारे और हमारे वालिदों के नाम घसीटे गये।

और जेल प्रवेश-संस्कार प्रारम्भ होगया।

सामने के कमरे में—जो शायद जेलर का कमरा था, हथकड़ियों और डण्डा-बेड़ियों की प्रदर्शिनी सी लगीहुई थी— ऊपर सबसे हलकी-हलकी, फिर क्रमशः भारी और उससे भी और भारी। हरेक को विचित्र भय से देखते देखते जब सबसे भारी डण्डा बेड़ी की ओर नजर गई तो सहज-विश्वासी मन भी यह विश्वास नहीं कर सका कि ये इतनी भारी डण्डा बेड़ियां मनुष्य के पैर में पहनाई जाती होंगी। मनुष्य तो क्या—ये तो शायद पशुओं को भी भारी पड़ें। पर नहीं हम ग़लती कर रहे हैं। हमें याद रखना चाहिये कि अब हम एक ऐसी दुनियां में हैं जिसे सभ्य संसार 'जेल' कह कर पुकारता है और जहां दोपाये प्राणी की उतनी भी कीमत नहीं जितनी कि परमात्मा की रची सृष्टि में चौपाये प्राणियों की समझी जाती है।

पास ही रखी हुई थी टिकटिकी— ऊपर हाथ बांधने के लिये उस में दोनों ओर एक एक लोहे का कड़ा और नीचे पैर बांधने के लिये भी दोनों ओर एक एक लोहे का कड़ा और बीच में शरीर के मध्यभाग को टिकाने के लिये चमड़े की छोटी सी गद्दी—स्थान स्थान पर खून के धब्बे। पास ही रखी हुई कई दर्जन बैंतें—कुछ तेल में भीगती हुईं।······सुना तो बहुत बार था, पर अब तक कभी देखा नहीं था। इस सबको देखते ही आंखों के सामने वह दृश्य नाचने लगा—जबकि जेल के अधिकारियों के अन्यायों का अपनी मृदुल वाणी से विरोध करता हुआ कोई सत्याग्रही इसके साथ बांध दिया जायेगा, फिर उसको नंगा कर दिया जायेगा, और कोई जल्लाद संसार की सारी निर्दयता को अपने हाथ की कलाई में भरकर जोर से बेंत को हवा में लहराता हुआ उसके कोमल गुप्त अंग पर......

अब्रह्मण्यम् ! अब्रह्मण्यम् ! स्मरण करते करते ही शरीर में सिर से पैर तक कँपकँपी छागई।

इस वातावरण में प्रवेश-संस्कार की क्रिया आगे बढ़ी—

एक डेस्क के पास बैठे हुए क्लर्क ने पूछ पूछ कर लिखना शुरु किया—आपका नाम, बाप का नाम, पेशा अपना और अपने बाप का,आयु, निवासस्थान—इत्यादि। फिर एक एक करके सारे कपड़े निकलवाये—उनको अलग अलग लिखा। हरेक चीज, जिसके पास जो भी कुछ था— कोई कागज़

का टुकड़ा, कोई पेन्सिल भी नहीं छोड़ी गई। जो ऐनक पहनने वाले थे उनकी ऐनक भी छीन ली गई। वे बिचारे बिना आंखों के हो गये। बहुत कहा कि बिना ऐनक के ये फैलाया हुआ अपना हाथ भी नहीं देख सकते। किन्तु उसका एकदम दो टूक जबाब दिया गया— "हम क्या करें, जेल का कानून नहीं है।" हमें हैरानी हुई कि जेल के कानून भी कैसे होते हैं?

प्रसंगवश, इतना और कह दूं कि जेल में रहते रहते जिन कैदियों को कई साल हो जाते हैं वे ही पुराने होने के कारण विश्वासपात्र बन जाते हैं और फिर वे ही जमादार नम्बरदार और पहरेदार के रूप में जेल रूपी मैशीनरी के पुर्जे बनकर उस अत्याचार के राज्य को चलाने में सहायक होते हैं। जो कोई कैदी पढ़ा लिखा होता है वह क्लर्क आदि का पद पाता है जो जेल में अति सम्मानास्पद समझा जाता है और फिर ये पद पाये हुए कैदी अपने आपको और कैदियों से ऊंचा समझने लगते हैं और इधर की उधर और उधर की इधर लगाकर अपनी पोस्ट पक्की किये रहते हैं। उनको छोटी मोटी सुविधायें भी मिल जाती हैं। यह कैसा विचित्र मनुष्य का स्वभाव है कि उसको यदि अपने साथियों से कुछ अधिक सुविधायें दे दी जावें तो वह सहर्ष अपने साथियों के ऊपर अत्याचार करने के लिए तैयार हो जाता है। सभ्यता और संस्कृति चाहे कितनी ही

उन्नति क्यों न करलें पर वह सृष्टि के आदि का गुफावासी मनुष्य, मनुष्य के मन में से शायद ही कभी हट पाये !

× × ×

इधर से निवृत्त हुए तो दूसरी ओर स्टोर की तरफ ले जाये गये। दरवाजे के सामने ही लोहे की एक अहरन रखी थी। बहुत देर तक अपनी जिज्ञासा को दबाना नहीं पड़ा—एक एक को बुलाकर बारी बारी से उस अहरन पर पैर रखवाकर हथौड़े की चोट से भारी सा लोहे का कड़ा पैर में डाला जाने लगा। हां, प्रवेश संस्कार में यह भी एक आवश्यक क्रिया है ! एक पैर में यह नया बोझ एक दम अप्रिय सा लगा। किन्तु जब सबके ही पैरों में वह लोहे का भारी २ कड़ा शोभित होने लगा और अन्य भी आते जाते कैदियों के पैरों में उसी तरह का कड़ा देखा तो पता लगा कि यह लोहे का कड़ा कैदी का आभूषण है। बिना इस आभूषण के कैदी Qualified नहीं होता और जिसके पैर में यह जितना ही भारी होता है वह उतनी ही शान से अकड़कर चलता है। इस लोहे के कड़े को धारण करके चलने में मुश्किल पड़ती है और तेजी से नहीं चला जा सकता—भागने की तो फिर बात ही क्या ! पर जो जान-बूझकर कैदी होने आये हैं उन्होंने भागकर करना ही क्या था! पीछे आगे जाकर लगभग दो महीने बाद जब समाचार पत्रों में आन्दोलन मचा और अधिकारियों ने उस आन्दो-

लन से परेशान होकर हमारे पैरों में से इन लोहे के कड़ों को निकाल डाला तो एक बार हमारे पैर फिर आभूषण-शून्य होगये और हमें तब अपने पैर उससे कहीं अधिक हल्के लगने लगे थे जितने कि अब उन कड़ों को पहिनने से पहले थे। और विशेष तो कुछ याद नहीं—सिर्फ यह याद है कि उन कड़ों के निकल जाने के बाद उनसे बने हुए घाव बहुत दिनों तक दर्द करते रहे थे!

फिर एक पतला सा कम्बल दिया गया—काला और फटा हुआ। एक टाट दिया गया—जिसकी चौड़ाई किसी भी हालत में दो बालिश्त से ज्यादा नहीं थी। बिस्तर तैयार होगया। कहा गया—अपना अपना बिस्तर उठाओ, हम बगल में बिस्तर लेकर खड़े होगये—जैसे कहीं यात्रा के लिए जाने को तैयार हों।

फिर एक लोहे का तसला और एक लोहे का गिलास—जिसको वहां की भाषा के अनुसार हम भी 'चम्बू' कहने लगे थे। उसकी आकृति हूबहू वही थी जो कि च्यवनप्राशादि दवाइयों के डिब्बों की होती है।

जब पूरे साजोसामान के साथ दो दो की पंक्ति में खड़े हुए, तो चेहरों पर सच्चे सैनिक की मुस्कराहट थी और जब एक सिपाही आगे और एक पीछे होकर हमें आगे चलनेके लिये कहने लगे तो हम भी एक अजीब मस्ती के साथ मन-मन में 'लैफ्ट-राइट लैफ्ट-राइट' कहते हुए आगे

बड़े। उस बड़े द्वार को पार किया— सामने सुन्दर सड़क। सड़क के दोनों ओर काल कोठरियां (Solitary Cells) कुछ कोठरियों के द्वार खुले हुए, उनमें बिलबिलाते हुए कैदी। हम जब सामने से गुजरे तो वे अंगुलियों से हमारी ओर इशारा करने लगे। अत्यन्त धीमे कानाफूसी के से स्वर में उनके मुंह से कुछ प्रश्नवाचक शब्द निकले जिनको हम नहीं समझ पाये।

अपने २ चम्बू में पानी भर कर लाये। फिर सड़क पर ही बैठा दिया गया—एक पार्श्व में बिस्तर और सामने तसला। काली २ वर्दी पहने हुए दो कैदी आये—बड़ी २ बाल्टियां और बड़ी २ कड़छियां। तसले में बारी बारी से कुछ गोबर सा लुचलुचा पदार्थ—जो शाक था और हाथों में बड़े २ काले टिक्कड़। वह रोटी पता नहीं किस अनाज की थी और शाक भी पता नहीं किस चीज़ का था—किन्तु शाक में प्याज, लहसन, तेल और मिर्च की भरमार अत्यन्त स्पष्ट थी।......शर्त लगाई कि देखें कौन सबसे अधिक खाता है। नया उत्साह था, बड़े जोश के साथ खाना शुरु किया। भूख भी बड़े ज़ोर की लग रही थी किन्तु हममें से कोई भी हज़ार कोशिश करने पर भी, उस दिन आधी से ज्यादा रोटी नहीं खा सका।

× × ×

मोर्जन खाने के बाद फिर पंक्ति। अंधेरा हो चला था। जेल के बाहर पास ही था 'सिग्रिगेशन वॉर्ड' (Segregation ward), उसकी और हमें ले गये। करीब आधा फर्लाङ्ग जाने के बाद वैसा ही किलों का सा भारी भरकम द्वार। खिड़की खुली, अन्दर घुसे, एक भयानक वार्डर ने स्वागत किया। एक दम एक छोटी सी कोठरी का ताला खोला, उसमें पांच साथियों को घुसेड़ दिया। उसके साथ की दूसरी कोठरी में बाकी चार। पहले लोहे की मोटी २ सलाखें, फिर जाली और फिर टीन के पत्तर-ऐसा था द्वार। बन्द होते ही अंधेरा घुप्प! टाट बिछाया, सिरहाने पर तकिये की जगह तसला रखा और काला कम्बल ओढ़ कर पड़ गये। जहां से कम्बल फट गया था वहां से पैर बाहर निकल गये। जूयें अलग। जो कोठरी एक के लिये थी उसमें पांच पांच। एक कोने में शौच के लिए गमला—दुर्गन्ध। करवट बदलने की भी गुञ्जाइश नहीं। जिस पैर में कड़ा पड़ा था, उसे कभी दूसरे पैर के ऊपर रखकर, कभी सिकोड़कर, कभी फैला कर तरह तरह से कोशिश की कि दर्द न करे—पर वह भारी २ जिधर पड़ता था उधर ही दर्द करता था। और फिर लगने लगी सर्दी।

अब तक पुस्तकों में जेलों की कहानियां ही पढ़ी थीं। जेल की वास्तविकता को इतने पास से देखने का अवसर कभी नहीं मिला था। इसी लिए आज हरेक चीज़ बड़ी

रहस्य पूर्ण लग रही थी— न जाने एक २ चीज़ के ऊपर कितनीं पुस्तकें लिखी जा सकती हैं !

किन्तु यह तो 'इब्तिदाए' है। आगे न जाने और क्या क्या सहना होगा। सारी रात यही सोचते रहे। और नींद? फटा टाट, फटा कम्बल, पैर का कड़ा, सर्दी और करवट का अनवकाश—इतने सारे शत्रुओं के बीच में खड़ी खड़ी वह बिचारी प्रभात की प्रतीक्षा करती रही।

रात की नीरवता में चारों ओर लगातार श्वास की प्रतिध्वनि सुनाई देती रही।

अदालत में

अगले दिन सवेरे जब रोटी खाने के बाद हम अपना तसला-चम्चू साफ़ कर रहे थे और यह कोशिश कर रहे थे कि देखें कि कौन अपना तसला ज्यादह चमकाता है— क्योंकि यह जानते हमें देर नहीं लगी थी कि अपना तसला चम्चू सब से अधिक चमकदार रखना भी जेल में एक प्रतिद्वन्द्विता की चीज़ है; उसी समय हमारा बुलावा आया। दो-दो की पंक्ति [जिस से वहां 'जोड़ी' कहा करते थे] में बैठा कर हमें हमारे टिकट बांटे गये। हम समझ गये कि आज अदालत में हमारी पेशी है।

सिग्रिगेशन वार्ड से निकाल कर पुनः जेल के मुख्य-द्वार के अन्दर धकेले गये। वहां हाज़िरी हुई— अपने और अपने संरक्षकों के अनहोने नाम सुनने को मिले— धीरेन्द्र का 'धीरानन्द' विद्यासागर का 'दरियासागर' और सत्येन्द्र का 'सत्ता बन्दर'। (या तो वे सिपाही काले अक्षर और भैंस में अन्तर नहीं जानते थे या फिर उर्दू भाषा ही इतनी वाहियात है कि उस में लिखो कुछ और पढ़ो कुछ)।

लारी आई और उसमें ठूंस दिये गये। एक अजीब तमाशा था। एक के ऊपर एक— फिर दो—फिर तीन, और इस प्रकार करते २ उस बीस सवारियों की लारी में पूरे पचास कैदी ठंस दिये गये— मानों कि यह कोई मालगाड़ी का डिब्बा हो जिस में ऊपर से नीचे तक बोरियां ठूंस ठूंस कर भरनी हों। ऊपर से तुर्रा यह कि दस सिपाही उसमें और बैठाये गये—सशस्त्र। सिपाही सीटों पर बड़े आराम से बैठे और कैदी एक दूसरे के ऊपर लदे हुए सांस लेने के लिये तरसने लगे। इस वातावरण को और गहरा करने के लिये मोटर के चारों ओर पर्दा लगा दिया गया—क्योंकि शहर में से होकर गुज़रते समय डर था कि कैदी नारे लगा कर नागरिकों को कहीं उत्तेजित न करदें।

अदालत के द्वार के सामने उतरे। ज़रा सांस लेने का अवकाश मिला। मन ही मन भाग्य नगर के भाग्य की सराहना करने लगे जहां मनुष्य को पशुओं से भी नीच भाग्य का शिकार बन कर रहना पड़ता है और फिर भी यह अधिकार उसको नहीं है कि शिकायत कर सके!

५ फर्वरी। दिन भर कटघरे में बन्द रहे और प्रतीक्षा करते रहे कि देखें कब हमारी बारी आती है। कटघरे के अन्दर बाहर चारों ओर उन सिपाहियों की बीड़ी सिगरेटों की दुर्गन्ध भरी हुई थी, जो कैदियों के नियन्त्रण के लिए

पहरा देते हुए बात बात में गालियों की बौछार कर रहे थे। लाचार होकर चुपचाप एक कोने में प्राणायाम का अभ्यास करते हुए सिकुड़े बैठे रहे। एक बार पेशी की नौबत आई तो हाथों में हथकड़ियां डालकर पेश किया जाने लगा, किन्तु हम अदालत की पूरी तरह झांकी भी न लेने पाये थे कि बैरंग वापिस लौटा दिया गये।

पेशी की तारीख़ बदल गई।

× × ×

आठ फर्वरी। अदालत के अन्दर—मजिस्ट्रेट के सामने। मजिस्ट्रेट ने यह जान कर कि हम सब विद्यार्थी हैं अपनी न्यायपरायणता को प्रमाणित करने के लिये पूछा—"क्या हिन्दुस्तान का नकशा देखा है?"

"हां।"

"क्या रङ्ग है?"

"लाल।"

"यदि लड़ना था तो वहीं लाल रंग से क्यों नहीं लड़े? लड़ाई तो उसके साथ थी जो पेरा और नखूलैरा तीसरा आदमी हमारे बीच में आ घुसा है। आपस में लड़ने से क्या फायदा?"

मजिस्ट्रेट साहब के मुख से ऐसी उदारतापूर्ण बुद्धिमत्ती की बात सुनकर आश्चर्य हुआ। लेखक ने उत्तर दिया—

"मजिस्ट्रेट साहब! आपने बात बड़े पते की कही है। किन्तु यदि आपने थोड़ा-सा ध्यान दिया होता तो शायद आप ऐसा न कहते। इस समय हम उन अधिकारों के लिये लड़ने आये हैं जो किसी भी जाति और किसी भी राष्ट्र के लिये जन्मसिद्ध समझे जाते हैं। यदि वे जन्मसिद्ध अधिकार हमें ब्रिटिश भारत में प्राप्त न होते, तो हम वहां लड़ते। किन्तु जो चीज वहां हमें प्राप्त है, वह यहां नहीं है। क्या आप नहीं जानते कि हिमालय से कन्या कुमारी तक सारा भारतवर्ष एक देश है, एक राष्ट्र है। उसके किसी एक भाग पर यदि अन्याय और अनीति का ताण्डव होता है, तो न केवल हम विद्यार्थियों का, किन्तु आपका और प्रत्येक भारतवासी का कर्त्तव्य है कि वह उसको दूर करे। हैदराबाद की जनता को नागरिक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है। यदि आप "नागरिक स्वतन्त्रता" की परिभाषा जाना चाहते हैं तो मैं अमुक(……)प्रोफेसर के शब्दों में कहूंगा कि "प्रेस और वाणी की स्वतंत्रता का ही नाम नागरिक स्वतन्त्रता है।" आज हैदराबाद के निवासियों को न तो प्रेस की स्वतन्त्रता है और न ही वाणी की। किसी भी नागरिक के ये आदिम अधिकार हैं, इनके बिना वह सभ्य नहीं कहला सकता।''' मत समझिये कि यह साम्प्रदायिक प्रश्न है। यह तो मानवता का प्रश्न है— इसमें पक्षपात की गुंजायश ही नहीं हो सकती। यह

और बात है कि हैदराबाद की जनता अस्सी प्रतिशत हिन्दू है इसलिये ये सारे अत्याचार हिन्दुओं के ऊपर जाकर पड़ते हैं। किन्तु मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि यदि काश्मीर में या ऐसी ही किसी अन्य रियासत में जिस में, अधिकतम आबादी मुसलमानों की होती और वहां अत्याचार होते, यदि वहां इस प्रकार मानवता का अपहरण होता तो, जिस प्रकार हैदराबाद में सब से पहले सत्याग्रह करने वाला गुरुकुल कांगड़ी का जत्था है, उसी प्रकार वहां भी सबसे पहला सत्याग्रही जत्था गुरुकुल कांगड़ी का ही होता !... इसी लिये हम उस लाल रंग को छोड़ कर इस पीले रंग से लड़ने आये हैं।"

सारी अदालत में स्तब्धता छा गई। बाहर बहुत भीड़ इकट्ठी हो गई थी और उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी कि इस केस का क्या फैसला होता है। उधर आंख उठा कर देखा-कोई हिन्दू नजर नहीं आया क्यों कि सिपाही इतना स्वेच्छाचार से काम लेते थे कि हिन्दुओं को पहले से ही द्वार में नहीं घुसने देते थे।

अमीन साहब ने उठ कर हमारे वारण्ट पेश किये। धारा १२६, १२२, १५ और २८ के अनुसार हमें गिरफ्तार किया गया था। बयान देते हुए उन्होंने झूठे झूठे अभियोग लगाये कि किस तरह इन्होंने जनता को बरगलाया, उत्तेजित किया, साम्प्रदायिक वैमनस्य फैलाया और

अफ़वाहें उड़ाईं। जब गवाह की आवश्यकता हुई तो यों ही गली में से जिस को किराया देकर लाये थे और एक एक शब्द घुटवा रखा था, उसे हाजिर किया। जब उस से जिरह की गई तो वह दिशायें ताकने लगा और कुछ ऐसी असम्बद्ध बातें कह गया कि उनको सम्बद्ध करना अमीन साहब के लिये भी मुश्किल पड़ गया। उन अमीन साहब पर हैरानी हो रही थी जो गिरफ्तार करते समय बड़े सभ्य, शिष्टाचार-युक्त और समझदार बन रहे थे, किन्तु अब वही परले सिरे के झूठे के भी कान काटते थे। कोई और गवाह पेश करने की मांग की तो वे एक से अधिक गवाह भी पेश नहीं कर सके।

मजिस्ट्रेट साहब हममें से प्रत्येक से अलग २ बयान लेने लगे। कहा—तुम पर ये अभियोग हैं—जलसा किया, जलूस निकाला और जनता को भड़काया एवं विद्रोहात्मक पर्चे बांटे (धारा १२६, १२२ १५ और २८,), इनके

उत्तर में जो कुछ कहना हो, कहो।

प्रत्येक ने अपने ढंग से युक्ति पूर्वक इन अभियोगों की निस्सारता सिद्ध की और कहा कि न तो हम ने कोई जलूस निकाला, नहीं जलसा किया और नहीं जनता को भड़काया। हां, सत्याग्रह बेशक किया है, उसे आप इनमें से कुछ भी समझ [illegible]। यह तो हम पहले ही जानते हैं, कि आप के यहां की अदालतें न्याय के नाम पर ढोंग

रचती हैं। यहां भी वारण्ट कटते हैं, गवाह पेश किये जाते हैं और जिरह भी होती ही है; किन्तु परिणाम वही होता है जो पुलिस चाहती है। यहां की पुलिस और न्यायालय दोनों एक हैं। इस लिये न्याय की आशा से और निज को निर्दोष सिद्ध करने के लिये हम कुछ भी नहीं कहना चाहते। कहना चाहते हैं तो केवल इतना कि इस रियासत के पक्षपात-पूर्ण कानूनों को बदलने के लिये लगातार ६ साल तक किये गये प्रयत्नों से निराश होकर आज हम जो कुछ कर सकते थे, हमने किया है। अब हमको विद्रोह का दोषी करार देकर आप जो करना चाहते हैं, आप करिये।

"क्या कोई वकील करना चाहते हो?"—मजिस्ट्रेट साहब ने पूछा।

"नहीं।"

"कोई गवाह पेश करना चाहते हो?"

"नहीं। मजिस्ट्रेट साहब! गवाह तो हम पेश करें कहां से? क्यों कि—इस रियासत में हम अजनबी मेहमान हैं। किसी भी आदमी को हम नहीं जानते। क्यों कि हमतो पहली बार ही इस रियासत में आये हैं। हां, जानते हैं तो केवल एक व्यक्ति को—वे हैं हमारे अमीन साहब जिन्होंने हमें गिरफ्तार किया है। पर दुःख यही है कि सारी रियासत में जिस एक मात्र व्यक्ति

को हम जानते हैं, वे अमीन साहब ही हमारे उल्टे पड़ गये हैं और आज झूठ बोलने पर तुले हुए हैं। [उच्चैर्हास्य] और वकील हम करें क्यों? क्योंकि हम हरिद्वार से—इतनी दूर से जो यहां आये हैं, सो भूठ बोलने के लिये नहीं आये। और क्यों कि हम पढ़े-लिखे कॉलिज के विद्यार्थी हैं, इस लिये यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि हम किसी के बहकाने से आगये हैं। जो कुछ हमने किया है, उतना हम स्वयं मानते हैं, जो नहीं किया है उसे मानेंगे भी नहीं-चाहे कुछ ही कर लीजिये। अब आप जो सजा देना चाहें—दें, हमारा काम समाप्त हो गया।

× × ×

चार घण्टे की बहस के बाद 'लञ्च' का समय आगया। लञ्च के बाद फैसला सुनाया गया। १८ धारा हटादो गई क्योंकि वह हमारे टिकटों में भी अंकित नहीं थी। केवल अमीन साहब की ताजी सूझ ने एक और अभियोग अदालत में हो लगा दिया था। बाकी हरेक धारा के लिये ६-६ महीने का सख्त कारावास—कुल डेढ़ साल। किन्तु तीनों सजायें इकट्ठी चलेंगी, (Concorreutly) इस लिये ६ महीने में तीनों समाप्त।

लौटते समय ५० के बजाय २० ही कैदी लारी में बैठे। क्योंकि अदालत में मजिस्ट्रेट के सामने जब हमने शिकायत की कि क्या यह भी कोई जेल का कानून है कि २० सवारियों

की लॉरी में ५० कैदी बिठाए जावें, तब मजिस्ट्रेट ने पुलिस-इंस्पैक्टर से जबाब-तलब किया। सरकार के खैरख्वाह पुलिस इंस्पेक्टर साहब ने बताया कि यद्यपि सरकार के पास लारियां कई हैं, किन्तु पेट्रोल बहुत ज्यादा खर्च होने के डर से ऐसा किया जाता है। किन्तु पीछे उन्होंने बड़ी भलमनसाहत के साथ स्वीकार कर लिया था कि आदमी की जान की अपेक्षा सरकार का पेट्रोल अधिक महँगा नहीं है।

मि. हॉलेन्स आये

एक दिन दुपहर को हमें बुलाकर कपड़े दिये गये। अबतक सफेद पोश थे अब गेरुये पहनने पड़े—श्वेताम्बरों से निकल कर काषायवस्त्र-धारियों की सूची में। 'ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत्—' के आदर्श का इस तरह जबर्दस्ती पालन करवाया जायेगा, यह आशा नहीं थी।

पोशाक—एक कुर्त्ता, एक पजामा और एक टोपी।

कुर्त्ता—किसी की बाँह आधी और किसी की पूरी। बटन को जगह गले में घुण्डी, और किसी में वह भी नदारद। कोई स्वयं कुर्ते से बड़ा और किसी से कुर्ता बड़ा।

पजामा—एक टांग ऊंची, एक नीची, चूड़ीदार—इसलिये उसकी परिधि से मोटी टाँग उसमें पड़ते ही चर्र से फट जाये। किन्तु पहनना पड़ेगा वह फटा हुआ ही, क्योंकि नम्बर डल चुका है इसलिये बदला नहीं जा सकता।

फिर टोपी—कोई तिकोनी, कोई चौकोनी, कोई गोल, कोई लम्बी—कैसी ऊटपटांग।

जब पहला व्यक्ति अपनी 'फुल ड्रेस' पहन कर तय्यार होकर खड़ा हुआ तो अनायास ही हँसी मुंह से

फूट पड़ी—"वाह भाई वाह ! तू तो पूरा 'हतो' (काश्मीरी कुली) लगता है।"

पर हँसी का अवकाश नहीं था। हँसी उड़ाता भी कौन, और किसकी,क्योंकि ऐसा 'कार्टून' तो हममें से हरेक को ही बनना था।

थोड़ी दूर जेलर साहब कुर्सी पर बैठे कोई अंग्रेजी का अखबार पढ़ रहे थे। अचानक ही उस पर निगाह जो पड़ी तो एक शीर्षक दिखाई दिया—'गायकवाड़ एक्सपायर्ड' (Gayakwar Expired) देखते ही शरीर में विद्युत् की लहर सी दौड़ गई। 'महाराजा गायकवाड़ मर गये !' हैं !—हममें कुछ चुपचाप कानाफूसी सी हुई। अरे ! यह तो केवल एक समाचार है, न जाने इस प्रकार के और भी कितने ही समाचार होंगे जिन से दुनियां की गति-विधि में नित्य नये नये परिवर्तन आ रहे होंगे। राजनैतिक, सामाजिक और वैयक्तिक—सभी क्षेत्रों से, अब हम 'कट ऑफ़' हैं। हम नहीं जानते कि दुनियां में क्या हो रहा है। हम नितान्त अंधेरे में हैं और लगातार ६ मास तक इसी प्रकार हमें अंधेरे में रहना पड़ेगा।

हे भगवान् ! क्या हमें अखबार पढ़ने का भी अधिकार नहीं ! तो फिर अच्छा होता कि हम तुम्हारी सृष्टि में अनपढ़ ही रह जाते। तब, अखबार को देखकर कम से कम जी में जलन तो न होती !

अगले दिन दफ्तर में बुलाकर कई घण्टे खड़ा रखा। फिर पैर का, छाती का और सिर का नाप लिया गया। मुझे डर है कि कहीं कोई पाठक पूछ न बैठे कि कई घण्टे खड़ा क्यों रखा गया, क्या इसका भी कोई नाप लेना था कि ये कितने घण्टे खड़े रह सकते हैं? परन्तु जिस प्रकार पशु घण्टों खड़े रहते हैं और उनके विषय में किसी प्रकार का प्रश्न अनुचित होता है, ठीक उसी प्रकार कैदी के विषय में भी हरेक प्रश्न अनुचित समझा जाना चाहिये। क्योंकि जेल की 'डिक्शनरी' में कैदी और पशु दोनों पर्याय-वाची माने जाते हैं— उनके लिये इतनी छोटी बातों की पर्वाह नहीं की जाती!

फिर एक दिन तोल करने के लिये चिकित्सालय ले जाये गये। रजिस्टर में हरेक का तोल ४ पौण्ड कम लिखा गया। शायद यह भी वहां का दस्तूर ही है। क्योंकि जेल के कष्टों से कैदी कमज़ोर तो होगा ही, इसलिये पहले से ही ४ पौण्ड का हाशिया (Margin) रख लिया जाये तो हर्ज ही क्या है!

वहां से लौटते हुए एक साथी ने कम्पाउण्डर साहब को बताया कि उसे जुकाम की शिकायत है। वह कितना आश्चर्यजनक दृश्य था जब कि कम्पा- उण्डर ने गिलास में कुनोन मिक्श्चर डालकर अत्यन्त निष्काम भाव से उसके गले में उंडेल दी और वह देर

तक अपना कड़वा मुंह लिये हमारी हँसी का पात्र बना रहा।!

इतने में आगया अचानक शुक्रवार— परेड का दिन।

अपना २ बिस्तर और थाली चम्बू लेकर हमें बैठा दिया गया—आमने-सामने दो पंक्तियां। जो कम्बल फटे हुए थे उनको वार्डर ने इस प्रकार ढक दिया कि नजर के सामने न आने पावें, और सबको अच्छी तरह समझा दिया कि यदि किसी ने कुछ भी शिकायत की तो उसका भला नहीं होगा।...... सदर, दरोगा, इन्तजामी और न जाने कौन कौन—पूरे लश्कर के साथ मोहतमीम—सुपरिंटेडेंट साहब आये।

उस दिन भाई विश्वमित्र को जोर का बुखार आया हुआ था। सोचा कि यदि प्रार्थना की जाये कि डाक्टर आकर बीमार को देख जाय और दवाई दे जाये तो शायद कोई पाप नहीं होगा। क्योंकि 'सिग्रिगेशन वार्ड' में डाक्टर साहब कभी भूल कर भी नहीं झांकते थे।

नम्र शब्दों में प्रार्थना की, तो उसका उत्तर मिला— "खबरदार! आगे से कभी ऐसी शिकायत की। तुम्हें क्या पड़ी है? बीमार है तो रहने दो। मर ही तो जायगा, और तो कुछ नहीं होगा।......क्या इसे भी घर समझ रखा है। यह जेल है। दवाई की ही आवश्यकता थी तो यहां क्यों आये?"

ठीक है ! अब हम कैदी हैं, और कैदी को यह अधिकार नहीं है कि वह बीमार होने पर दवाई की भी आशा कर सके !......आखिर वह मर ही तो जायेगा, और तो कुछ नहीं होगा !

× × ×

थोड़ी-सी दिनचर्या की भी चर्चा कर दूं—

सवेरे ६ बजते ही कोठरियों के ताले खुलते थे और हम सब अपनी प्यासी आंखों से सूर्य भगवान् का दर्शन करने के लिये ऐसी उत्सुकता से दौड़ते थे जैसे कि जंगली जानवर अपने शिकार के लिये झपटता है। ......उन्मुक्त गगन के स्वच्छन्द आलोक के निवासी रातभर एक तारे की भी टिमटिमाहट के लिये तरसते तरसते जब थक कर सो जाते तो उनकी आंखों के अन्दर-बाहर चारों ओर गम्भीर अन्धकार का ही पर्दा पड़ा होता। कल्पना देवी का साम्राज्य अनायास ही सजग हो उठता और रंग-बिरंगे स्वप्न आकर पलकों पर झूला डालते। बन्दी कभी सोचता स्वजनों के विषय में, कभी देश और जाति और आत्मा और परमात्मा।...... कि इतने में अर्धरात्रि के तीव्र अन्धकार को चीरती हुई पहरेदार के फौजी बूटों को कर्णकटु टाप उसे अपने कानों के पास कोठरी के द्वार के बाहर सुनाई देती और उसके सारे स्वप्न छिन्न भिन्न हो जाते। आंखें खुल जातीं।......किन्तु वह आंखें खोलकर

क्या करता, किसे देखता ? इस घनघोर अन्धकार में चारों ओर से विभीषिकायें अनन्त रूप धारण करके उस के सामने आतीं—वह कहां तक उपेक्षा करता......वह फिर अपनी आंखें बन्द कर लेता और यह मधुर कल्पना करके आश्वासन पाता कि बाह्य सृष्टि के सारे अन्धकार को मैंने अपने नयन-कपाटों में अवरुद्ध कर लिया है और अब बाहर केवल आलोक ही आलोक शेष रह गया है !......

हां, तो सवेरे ६ बजते ही ताला खुलता था—केवल एक घण्टे के लिये। उस एक घण्टे में ही सारे नित्य कर्म करना और पेट की ज्वाला बुझाने के लिये दो दो टिकड़—जिनमें कभी रेत, कभी सीमेण्ट, कभी कङ्कर और कभी २ कीड़े-मकोड़े—उदर-दरी में डाल लेना, और ऊपर से चम्बू भर पानी उँडेल लेना—पानी, जिसमें प्रायः मिट्टी के तेल की बू आती थी। और फिर 'नित्यकर्म' से आप क्या समझे ? उस वार्ड में एकसौ पचास कैदी थे, केवल दो शौचालय—जिनमें आड़ की तो कोई आवश्यकता समझी ही नहीं गई थी, बारी बारी से जाते। शौचालय के द्वार पर पंक्ति-बद्ध भीड़ खड़ी होती—कि पहले इसकी बारी है, फिर इसकी और फिर इसकी—यदि किसी को जरा-सी देर लग जाती तो सिपाही पीछे से डाँटता—"जल्दी निकलो !"

इस प्रकार नित्य कर्म के रूप में केवल शौच की ही आज्ञा थी। हाथ धोते ही सीधे भोजन के लिये बैठना पड़ता था। ज्योंही घण्टा समाप्त हुआ त्योंही फिर ताले के अन्दर। यदि हम खुली हवा में थोड़ी देर और सांस ले लेते या यदि धूप थोड़ो देर और हमारे अंगों का स्पर्श कर लेती तो, डर था कि कहीं वह हवा और वह धूप भी हमारे सहवास से राजद्रोही न बन जायें—शायद!

और फिर यही हिसाब शाम को भी था। तीन बजे ताला खुलता—एक बार फिर अनन्त भावनाओं के भण्डार विस्तीर्ण गगनमण्डल को और असंख्य स्फूर्त्तियों के आगार दिङ्मण्डल को अपनी आंखों की कपाटी में बन्द करते—रात्रि के अन्धकारमय पथ के लिये इस प्रकार सम्बल तय्यार होता। और चार बजते-न-बजते 'वैताल फिर उसी डाल पर' बैठा दिया जाता—मूक, निःस्पन्द और अकेला!

दिनभर?

दिनभर पड़े रहते चुप चाप। कभी कभी लोहे की चद्दर से ढके उन दृढ़ कपाटों के छिद्रों के बीच में से आस-पास की अन्य कोठरियों में पड़े अपने साथियों की ओर झाँकते। सिर्फ झाँकते ही, क्योंकि बात करना मना था और यदि बात करते पकड़े जाते तो दण्ड मिलता! (जैसे कि उस दिन एक बन्धु का हाल चाल पूछते हुए भाई विद्यासागर को डबल गंजी में डाल दिया गया था!)

जिस प्रकार चुपचाप पड़े हुए लोहे को जंग लग जाता है और वह घिसता चला जाता है, ठीक वही हमारी दशा थी। किसी से बात नहीं कर सकते, कोई काम करने को नहीं दिया गया, सिर्फ चुपचाप पड़े रह सकते हैं। दिन में तो दीवारों के कोनों में किन्हीं भूतपूर्व अभागे अपने ही साथियों की—अस्पष्ट लिखावट का अर्थ लगाते रहते और रात्रि को उन विभीषिकाओं का भाष्य करते रहते जिनको स्वयं हमारी ही कल्पना अन्धकार-पट पर चित्रित करती रहती।......ऐसा लगा कि धीरे धीरे पागल होने की नौबत आरही है।

सिग्रिगेशन वार्ड की दीवार के साथ ही लगा हुआ था पागलखाना (Lunatic asylum) जो लोग जेल के कष्टों को नहीं सह सके, जिनको सालों तक अलग अकेली कोठरियों में बन्द रहना पड़ा, जो मनुष्य नाम के किसी भी प्राणी की सहानुभूति का स्वप्न भी नहीं ले सके; उनको एक-रस वातावरण ने चेतना-शून्य—पागल बना दिया। कहीं हमारा भी यही भविष्य न हो— इसी से डर कर तो एक दिन लेखक अपने वार्डर से काम के लिये लड़ पड़ा था, और जब उसने कोई भी काम देने से इन्कार कर दिया और कहा कि तुम पढ़े-लिखे लोग ऐसा-वैसा काम नहीं कर सकते, तो उसने बिना कुछ कहे-सुने चुप चाप कोने में पड़ी हुई झाड़ू उठाई थी और सारे वार्ड की सफाई करने में लग गया था।

इसी तरह आगई शिवरात्रि। उस दिन सबने मिलकर दरख्वास्त की कि आज हमारा त्योहार है इसलिये हमें स्नान करने की आज्ञा मिलनी चाहिये, संध्या हवन करने की और उपवास करने की आज्ञा मिलनी चाहिये, और साथ ही शाम को फलाहार का प्रबन्ध होना चाहिये।

परिणाम यह हुआ कि दुपहर को बारह बजे प्रत्येक की कोठरी में से बारी २ से अलग २ निकाला गया और पांच-पांच चम्मच पानी नाप कर दिया गया। इस इतने पानी में चाहे तो वह नहा ले, या कपड़े धोले, या कुछ ही करले! कपड़े वैसे ही पुराने मिले थे और फिर इतने दिन से नहाना भी नहीं मिला था—सोचिये कि एक महीने के अन्दर जूएं कितनी भर गई होंगी। फिर भी पांच चम्मच पानी!

काश! महीने में एक बार हम पानी की मालिश भी अच्छी तरह कर पाते!

× × ×

भोजन प्रारम्भ करने से पहले हमें मन्त्र बोलने का अभ्यास था। इस बुरे (?) अभ्यास के लिये हमें कई बार डाँटा गया, डराया-धमकाया गया! फिर भी येन-केन प्रकारेण भोजन की यह पूर्ववर्ती क्रिया जारी ही रही।

एक दिन सवेरे ६ बजे एक कोठरी का ताला जो खुला तो एक सत्याग्रही ध्यान-मग्न आंखें बन्द किये स्पष्ट स्वर

से सन्ध्या कर रहा था। सिपाही था मुसलमान, वह और तो कुछ नहीं समझा, उसने ज्योंही ओ३म का नाम सुना त्योंही दनादन उसकी पीठ पर डण्डा बरसाना शुरु कर दिया। यह दृश्य असह्य था। उस दिन निश्चय किया कि आज भूख हड़ताल होगी।

पीछे पता लगा कि आज मि० हॉलेन्स—जनरल इंस्पेक्टर ऑफ़ पुलिस—आने वाले हैं। पहले उन से ही क्यों न निर्णय करवा लिया जावे। नहीं तो, भूख-हड़ताल अन्तिम अस्त्र है ही।

कमर में दस्ती (उपर्ना) बंधवाकर हमें पंक्ति में खड़ा कर दिया गया—जैसे कोई खानसामों की पल्टन खड़ी हो।

मि० हॉलेन्स ने आते ही पूछा—"हरिद्वार के लड़के कहां हैं ?"

उन्हें बताया गया। बच्चों को फुसलाने के-से ढंग से उन्होंने कहा—

"तुम लोग इतने पढ़े-लिखे समझदार होकर यहां क्यों आये ? क्या तुम्हें अपना वतन प्यारा नहीं है ? हरिद्वार तो बहुत सुन्दर जगह है। अब तुम गंगा में कैसे नहाओगे ?"—और फिर उन्होंने सुपरिंटेंडेंट की ओर मुखातिब होकर, हर की पौड़ी का और वहां की मछलियों का ऐसा सुन्दर कवित्व-पूर्ण वर्णन किया कि कोई क्या

करेगा! नमकहलाल कुत्ते की तरह सुपरिंटेंडेंट साहब पूंछ हिलाते हुए हां में हां मिलाते गये। जब पुलिस के जनरल इंस्पेक्टर साहब को बताया गया कि हम हरिद्वार छोड़कर हैदराबाद क्यों आये हैं और क्यों हमें सत्याग्रह करने की आवश्यकता पड़ी है—तो उन्होंने अपनी भाव-भंगी से ऐसा दिखाया जैसे कि कुछ सुना ही नहीं।

और फिर जैसे आये थे वैसे चले गये।

× × मि० हॉलेन्स के आने का और कोई प्रभाव हुआ हो या न हुआ हो, किन्तु इतना अवश्य हुआ कि अगले दिन से ही हरिद्वार के लड़के एक एक करके चञ्चल गुडा जेल के सिग्रिगेशन वार्ड से निकाले जाकर जाने किस किस जेल में भेजे जाने लगे!

बदरखा

सायंकाल के झुटपुटे में, जब एक सिरे से कोठरियों के ताले बन्द होने शुरू हो गये थे और मैं इस प्रतीक्षा में था कि मेरे बिल की बन्द होने की बारी कब आती है —मेरा नाम और नम्बर पुकारता हुआ एक सिपाही आया; तब मैं सहसा यह अनुमान न लगा सका कि इस समय अपना थाली-चम्बू और टाट-कम्बल लेकर बुलाने का क्या मतलब है ? ठीक उसी दिन मुझ से थोड़ी देर पहले ही इसी प्रकार मेरे और दो साथियों को बुलाया गया था। अभी मैं उनके भविष्य के विषय में सोच ही रहा था कि स्वयं मेरी बारी आगई। - --

जेल के बीच में थी एक बड़ी टंकी, उसके चारों ओर थीं चार गैलरियां, उन गैलरियों में थीं भयानक कालकोठरियां, जिनमें विशेष विशेष कैदियों को रखा जाता था। ऐसी ही एक कालकोठरी में—जिसे वहां 'सर्कल गंजी' कहते थे, हमें भी ले गये।

लोहे की मोटी सलाखों के द्वार में एक छोटी-सी खिड़की खुली—चिड़ियाघर के पिंजरों की सी—और ठीक चिड़िया घर के जानवरों की ही तरह हम उस में

घुसेड़ दिये गये। चारों ओर तार कोल से पुती हुई अपनी कालिमा के कारण रात्रि के अन्धकार को और अधिक भयानक बनाती हुई दीवारें, एक कोने में छोटी भट्टी के आकार का शौचालय—उसकी गन्दगी और बदबू के कारण असंख्य मच्छर और डाँस, ठीक बीचों बीच फर्श में जड़ी हुई एक मोटी लोहे की जञ्जीर—जो इस तरह पैरों में बांधी जाती कि कैदी को दिन रात खड़ा ही रहना पड़ता, और खूब ऊँचे एक कोने में एक छोटा-सा रोशन-दान—इतना छोटा जितना कि एक ईंट का वेग।

हम तीनों साथी सोचते रहे कि हम ने ऐसा कौनसा जुर्म कर दिया कि हमको इस प्रकार सबसे अलग करके इस भयानक कोठरी में डाल दिया गया। सोने की कोशिश की—किन्तु वे मच्छर और डाँस न जाने कबसे प्रेमालाप के भूखे थे कि हमें देखते ही ज़बर्दस्ती कान के पास आ आकर ऐसे प्रेम-चर्चा करने लगे जैसे कि कोई बहुत दिनों का बिछुड़ा हुआ मित्र सारी बातें एक साथ ही कह देना चाहता हो।

—अचानक बालों में कुछ सरसराहट-सी।

यह क्या? हड़बड़ा कर उठे। जब कम्बल में हाथ डालकर उसे पकड़ा और पता लगा कि यह बिच्छू है—तो होश फाख्ता।

ऐसी हालत में तो यहां नहीं सोया जा सकता। सारी रात टाट के आसन पर शरीर के चारों ओर कम्बल अच्छी तरह लपेट कर 'या निशा सर्वभूतानां' को चरितार्थ करने वाले योगियों की तरह एक आसन से बैठे रहे और उस इष्टिका-परिमित छोटे से रोशनदान में से झांकती हुई यामिनी-कामिनी के सुहाग-सिन्दूर की तरह रक्ताभ-देदीप्यमान एक लघु-तारिका की ओर देखते देखते सवेरा हो गया।

× × ×

सवेरे कहा गया—"तुम्हें बदरखा भेजा जायेगा।"

समझ नहीं आया कि बदरखा कौनसी जगह का नाम है। अबतक तो यह शब्द हमारे कानों से परिचित था नहीं। फिर यह नई बला कौनसी है ?

पीछे पता लगा कि जेल-परिवर्तन (Transfer) का ही नाम बदरखा है।

अन्य बैरकों से भी कैदियों को बुलाया गया—अपने कुछ साथियों को उनमें देखकर आंखों की तृप्ति हुई। फिर पचीस--पच्चीस की दो टुकड़ियां बनाई गईं। पहले पच्चीस को लारी में भर कर निज़ामाबाद भेज दिया गया।

पहले तीन साथी वारंगल भेजे जा चुके थे। अब ५ और अलग हो गये।

फिर दूसरे पच्चीस में हमारी बारी आई। यह टुकड़ी गुलबर्गा जाने वाली थी। सौभाग्य की बात कि उसमें सात हम गुरुकुल के ही विद्यार्थी थे।

बीस सवारियों की उस लारी में २५ कैदियों के अतिरिक्त अपनी अपनी रायफलें लेकर १२ सिपाही और बैठे और मालगाड़ी के डिब्बे की तरह ऊपर से नीचे तक लद कर ज्यों ज्यों वह लारी रास्ते के साथ २ आगे बढ़ती गई त्यों त्यों रास्ता मुंह--आंख--नाक--कान को लाल मिट्टी के अम्बार का उपहार देता गया। मुख पर कपड़ा डालकर और आंखें मीचकर इस उपहार की स्वीकृति से तो इन्कार किया जा सकता था, किन्तु जब कभी एकदम ऊँचे कभी एकदम नीचे—विषम—पग पग पर बल खाते हुए सर्पाकार पहाड़ी रास्ते के कारण लोगों को उल्टियां आने लगीं तो इस से बचना मुश्किल हो गया।

—सबसे पहले सिपाहियों ने ही इस शुभ कार्य (?) का श्री गणेश किया। फिर क्या था—छूत की बीमारी की तरह चारों ओर इसने हाथ साफ करना शुरू किया। ज्यों ज्यों यह हाथ साफ़ करती जाती त्यों त्यों स्थान मैला होता जाता और उस मालगाड़ी के डिब्बे में परेशानी और बेचैनी बढ़ती जाती—किसी का हाथ खराब हो गया किसी का पैर, किसी का सिर और किसी की कमर—क्योंकि बोरियों की हिलडुल कर करवट बदलने का तो

अवकाश था ही नहीं। और अन्त में यह अवस्था हो गई कि जिस प्रकार बाढ़ आ जाने पर एक गरीब किसान उस प्रलय में डूबने से बचने के लिये अपने परिवार को साथ लेकर छप्पर पर बैठ जाता है—ठीक उसी प्रकार लोग ऊपर की सीटों से चिपक कर बैठ गये!

लगातार ६ घण्टे तक बेतहाशा दौड़ने के पश्चात् जब शाम को चार बजे लारी रुकी तो देखा कि गुलबर्गा जेल के 'मेन गेट' के सामने खड़ी है।

× × ×

श्री पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी के दर्शन हुए। उनके साथ अब तक यहां लगभग सौ सत्याग्रही ८ नं० की बैरक में थे। शाम को भोजन खाने के पश्चात् बैरक में बन्द होने पर सन्ध्या होता—अत्यन्त शान्त स्वर से—बैरक से बाहर शब्द जाने की आज्ञा नहीं थी। जो आनन्द वहां उस समय की सन्ध्या में आता था वह न तो पहले कभी आया और न ही कभी आगे आने की आशा है। यहां स्नानादि के लिये भी कोई रुकावट नहीं थी। हमें लगा कि स्वर्ग में आगये हैं। कहां वे एकान्त काल-कोठरियां—जिनमें हँसना मना—बोलना मना—साथियों से अलग चुपचाप अकेले पड़े-पड़े किवाड़ों से लगी जाली की पतली पतली तारों को दिन भर गिनते रहो—और रात को न तो ये तारें, न ही नील गगन के तारे—कुछ भी गिनने को नहीं!

उस प्रकार की निष्कर्मण्यता शरीर को श्रान्त कर देने वाली कर्मण्यता से कहीं अधिक भयानक थी। यह शून्यता तो दिल-दिमाग-देह तीनों को ही शून्य बना रही थी।......

अगले दिन सवेरे टिकट देख देख कर काम बाँटे गये।

वार्डर जब हमें काम करवाने के लिये एक ओर को लिये चला जा रहा था तो बीच में अकस्मात् जोर की घर-घर-घर की आवाज़ आई। वार्डर भलामानस था, थोड़ी देर के लिये उसने हमें मुड़कर देखने दिया। वह दृश्य देखा—एक लम्बी बैरक, डेढ़ सौ के करीब मल्ल लंगोटा बांधे खड़े खड़े दनादन चक्की चला रहे हैं। चोटी से लेकर एड़ी तक पसीने से तर—पसीने के ऊपर आटा—आंख-नाक-कान मुह सब आटे से भरे। क्या सफ़ेद भूत! कइयों के हाथों में छाले—किसी के छाले फूट गये तो लोहू लुहान हाथ। हाय! उस बेचारे की आँखों मे आंसू! किन्तु चक्की फिर भी लगातार चल रही है— पीठ के पीछे बेंत लिये वह वार्डर जो खड़ा है— जरासी देर के लिये चक्की धीमी हुई कि तड़ाक से पीठ पर एक बिजली-सी तड़प उठेगी! शाम के चार बजे तक अकेले ही बीस सेर आटा पीस कर देना है। यदि न पीस पाया तो उस दिन रोटी भी न मिलेगी!

क्या हमारे साथ भी यही होगा?...... मन में एक विद्रोह की भावना आई। नहीं, यह अमानुषिकता है!

× × ×

उस दिन हम चक्की खाने (सत्याग्रहियों वाले) में तीन सेर से ज्यादा आटा नहीं पीस सके। बाकी १७ सेर ज्वार बोरी पर वैसी की वैसी पड़ी रही। शाम को सुपरिंटेंडेन्ट साहब के सामने पेश किया गया—शिकायत हुई। पहला दिन समझकर उन्होंने विशेष कुछ नहीं कहा। हमने निश्चय कर लिया था कि अब तीन सेर से ज्यादा पीसेंगे ही नहीं, चाहे कुछ ही हो जाये!

अगले दिन फिर तीन सेर— फिर शिकायत। डराया धमकाया और छोड़दिया।

जब तीसरे दिन फिर वही शिकायत पहुँची तो दण्ड-स्वरूप कोल्हू की मशक्कत दी गई। सबसे कड़ी मशक्कत जेल में यदि कोई है, तो यह कोल्हू है। सिर पर जूआ डाल कर इसे उसी तरह खींचना पड़ता है जैसे कि तेली के घर बैल खींचता है, और उसी तरह दिनभर वृत्ताकार घूमना पड़ता है। एक मिनट के लिये भी रुक नहीं सकते। रुके कि निकलने वाला तेल सूख जाता है, और तिलों को फिर उसी अवस्था में लाने के लिये घण्टे भर और मेहनत करनी पड़ती है।

हमारे लिये इस भयानक दण्ड को सुनकर जितने भी सत्याग्रही उस समय जेल में थे—सब भूख हड़ताल पर उतारू होगये।

परिणाम यह हुआ कि सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब को प्रतिज्ञा करनी पड़ी कि न केवल हमें ही, किन्तु आगे से किसी भी सत्याग्रही को यह दण्ड नहीं दिया जायगा।

और उधर चक्कीखाने में तीन सेर का रिकार्ड होगया। तीन सेर से ज्यादा कोई पीसता ही नहीं था।

× × ×

५ मार्च को श्री चाँदकरण शारदा अपने साथ ६० सत्याग्रहियों का जत्था लेकर आये। उनके आने से सब सत्याग्रहियों में एक नया जोश और नई स्फूर्ति का सञ्चार होगया। शारदा जी हर रोज चिकित्सालय में जाते और स्वयं बीमारों की निगरानी रखते। कहीं कोई अन्याय या ज़बर्दस्ती देखते तो उसका विरोध करते। उनके आने से ही जेल में हवन का भी श्रीगणेश हुआ—सवेरे शाम दोनों समय सामग्री की सुगन्धि से वायुमण्डल ओत प्रोत हो जाता और अधिकारी लोग स्वयं आ आकर देखते कि इस निर्दोष हवन-कुण्ड में तो कोई विद्रोह की बात नहीं है। शारदा जी की स्पष्ट-वादिता और अन्याय-असहिष्णुता का ही यह परिणाम हुआ कि अधिकारियों ने उन्हें करीम

नगर की छोटी-सी एकान्त जेल में भेज दिया—जहां वे महीनों तक अकेले कष्ट भोगते रहे।

चक्की से निकाल कर हमें पत्थर कूटने पर लगाया। हमसे पहले दिनभर को मशक्कत के रूप में ६ घनफीट रोड़ियां कूट कर देनी पड़ती थीं। हथौड़ी के साथ साथ एक 'रिंग पास' की तरह छोटा-सा छल्ला भी मिलता—हरेक रोड़ी का उसमें से गुज़र सकना आवश्यक था। यह काम छुड़वा कर जब हमें कोई और काम दिया गया तो इसमें भी १ घनफीट का रिकार्ड रख चुके थे।

धीरे धीरे सारे देश में हैदराबाद-सत्याग्रह का नाद गूंज गया। हमने प्रारम्भ में वह जमाना भी देखा था जबकि किसी दिन कोई एक भी सत्याग्रही गिरफ्तार होकर आता और हममें सम्मिलित होता तो हम खुशी के मारे नाच उठते—'ओह! आज तो एक सत्याग्रही और आया है। यदि इस प्रकार रोज कोई न कोई आता रहा तो सफलता बड़ी जल्दी मिल जायेगी।' किन्तु पीछे पता लगा कि यह निज़ाम की रियासत इतनी आसानी से हमारे जन्म सिद्ध अधिकारों को मानने वाली नहीं है।······थोड़े दिन बाद पंजाब-केसरी लाल खुशहाल चन्द खुर्सन्द अपने साथ १५० सत्याग्रहियों का जत्था लेकर आये और हमारे सामने वाली पूरी बैरक उनके जत्थे के लिये खाली करदी गई। उस दिन हमारा उत्साह

जेल की दीवारों को तोड़ कर निस्सीम गगन में उड़ती हुई प्रबल वात्या से उलझने को तय्यार हो रहा था—किन्तु अभी उसका अवसर नहीं था।

फिर वह समय भी आया जबकि श्री महात्मा नारायण स्वामी जी और श्री खुर्सन्द जी को हमसे अलग करके शहर के बंगले में ठहराया गया। सत्याग्रहियों के अत्यन्त प्रार्थना करने पर सप्ताह में एक बार—शुक्रवार के दिन वे हमारे बीच में उपस्थित होते।

फिर वह ज़माना भी याद है जब कि राजगुरु श्री धुरेन्द्रनाथ शास्त्री जी भी अपना ५०० सत्याग्रहियों का जत्था लेकर गुलबर्गा जेल में ही पधारे। रात के ११ बजे जब जेल के मेन-गेट से होकर उनका जत्था अन्दर चौक में आ रहा था तो अपनी बैरक के बन्द किवाड़ों के छिद्रों में से हम बारी बारी से झांकते रहे थे कि किस प्रकार दो दो की 'जोड़ी' पूरे आध घण्टे में जाकर दरवाज़े के अन्दर घुस पाई थी!

और इस प्रकार ज्यों ज्यों जेल में सत्याग्रहियों की संख्या बढ़ती गई त्यों त्यों अधिकारियों के लिये प्रबन्ध करना कठिन हो गया। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि 'मशक्कत' भी अपने आप न्यूनतर होती गई। कौन काम ले—और कितने कैदियों से काम ले। वह ऐसा समय आगया था कि सत्याग्रह का सबसे बड़ा केन्द्र

गुलबर्गा ही बन गया था। १००० से ऊपर सत्याग्रही उस समय गुलबर्गा जेल में विद्यमान थे। नये नये 'कैम्प-जेल' जो तय्यार किये गये थे—उनमें भी जगह नहीं बची थी। फिर भी दिन-दिन संख्या बढ़ती ही जाती थी।

इस बाढ़ का निकास आवश्यक था। यदि पानी खड़ा रहता तो अधिकारियों को डर था कि कहीं किसी दिन कोई उत्पात न हो जावे। इसलिये उन्होंने शुरू से ही यह नीति रखी थी कि पुराने सत्याग्रहियों को बदरखा भेजते जाते और नयों के लिये जगह खाली करते जाते।

जिस दिन श्री खुशहालचन्द जी अपना जत्था लेकर आये थे उससे अगले दिन से ही बदरखा शुरू होगया। सबसे पहले गुरुकुल के विद्यार्थियों की बारी आई—क्योंकि सुपरिण्टेण्डेण्ट को कुछ ही दिनों में यह निश्चय हो गया था कि यदि जेल के अन्दर किसी तरह का आन्दोलन होता है तो उसकी जड़ ये छोटे छोटे लड़के ही होते हैं—जो देखने में तो छोटे ही हैं किन्तु वैसे आग के गोले हैं।

आपस में पूछते—तेरा कौन सी जेल वालों में नाम है? फिर आपस में ही जवाब देते—

यह न पूछो बदरखा किधर जायेंगे।
वे जिधर भेज देंगे उधर जायेंगे॥

—और इस तरह करते करते अपने राम के सारे साथी चले गये—कोई औरंगाबाद, कोई निज़ामाबाद, कोई

हैदराबाद, कोई वारंगल और कोई करीम नगर। बचपन से ही लगातार चौदह साल तक जिन के साथ रहते आये हैं, जिनके साथ खेले कूदे हैं, पढ़े हैं और हँसे रोये हैं— वे भ्रातृ-अधिक बन्धु भी अलग हो गये! कई सत्याग्रही अपने साथियों से अलग होते हुए संसार के सबसे अमूल्य मोती अपनी आँखों से जमीन पर लुढ़का देते। यदि हममें से भी कोई ऐसा अपव्यय करता तो दुनियां कह उठती—"निराश्या हन्त! हता मनस्विता!"

न जाने सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब ने लेखक को ही इतना भलामानस क्यों समझ लिया कि उसके सब साथियों को तो अन्य जेलों में भेज दिया, किन्तु उसे वहीं रहने दिया। शायद यह इसलिये था कि वह गीता के निष्काम कर्मयोग का अभ्यास कर सके। इसीलिये तो वह ऐसे अवसरों पर "स्थितप्रज्ञस्य का भाषा" इत्यादि श्लोकों को गुनगुनाता रहता था!

किन्तु अपने इन साथियों के बदरखा जाने से पहले—

× × ×

अपने साथियों के बदरखा जाने से पहले— एक दिन सुपरिटेंडेंट साहब ने एक वॉली बौल के मैच का आयोजन किया—पुलिस-टीम और सत्याग्रहियों के बीच। हमसे

आकर कहा कि यदि हार गये तो एक एक महीने के लिये डबलगंजी में डाल दूंगा।

शुक्रवार—सजावट के लिये सारे ग्राउण्ड में रंग बिरंगी झण्डियां लगाई गईं, सारे अफ़सर देखने आये, क्रिमिनल और सत्याग्रही—सारे कैदियों के देखने का भी प्रबन्ध किया गया।

पुलिस-टीम में बड़े लम्बे-चौड़े जवान थे। दूसरी ओर मुक़ाबले में हम गुरुकुल के ६ विद्यार्थी थे। बड़ी घबराहट हो रही थी—आज तीन तीन भार सिर पर थे—पहले गुरुकुल-माता का, दूसरा सत्याग्रही का और तीसरा आर्य समाज का। यदि हार गये तो तीनों कलंकित हो जायेंगे।

श्री पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज के चरण-कमलों का आशीर्वाद लेकर ग्राउण्ड में घुसे। उस आशीर्वाद का ही प्रताप था कि हम 'गुरुकुल' और 'सत्याग्रही' और 'आर्य समाज'—तीनों की शान बचा सकने में समर्थ हुए। विजयोल्लास से सत्याग्रही नाच उठे।

इस मैच की बड़ी दूर दूर चर्चा हुई क्योंकि पुलिस टीम वहां की सब से मशहूर टीम थी। आये दिन प्रसिद्ध प्रसिद्ध पार्टियों के लिखित चेलेञ्ज आने लगे, पर फिर साम्प्रदायिक वैमनस्य के डर से मैच नहीं हो पाया!

× × ×

फिर—बहुत दिनों बाद—

सायंकाल का समय था। अपनी बैरक में बैठे संध्या-हवन की तय्यारी कर रहे थे। कुछ सत्याग्रही चिकित्सालय में दवाई लेने गये थे। बीच में द्वार-रक्षक ने एक रोगी को दवाई लेने के लिये चिकित्सालय जाने से रोका। कुछ कहा सुनी होगई।

सिपाही ने रोगी को डण्डा मारा। कुछ सहृदय सत्याग्रहियों ने रोगी का पक्ष लिया। बात बढ़ गई। आस पास के अन्य सिपाही भी वहीं इकट्ठे हो गये। धीरे धीरे वहां काफ़ी भीड़ जमा होगई।

कहने पर भी जब भीड़ तितर बितर न हुई तो ख़तरे की घण्टी बज गई। पचास-साठ जवान लट्ठ लिये भीड़ पर टूट पड़े। बिजली की तरह क्षणभर में लाठी-चार्ज की ख़बर सब बैरकों में पहुंच गई। जैसे बैठे थे सब वैसे ही उठ कर दौड़ पड़े। किन्तु बाहर चौक में जाने का रास्ता नहीं था—सब दरवाजे एक दम बन्द कर दिये गये। आहत जन-शक्ति जाग पड़ी। जोर जोर से नारे लगने लगे। जोश और क्रोध के मारे लोग आपे में न रहे। कोई कोई बड़े २ पत्थर उठा कर दरवाजे तोड़ने के लिये चले। उनको आपस में बीच में ही रोक लिया।

पर, ओह! वे गगन-भेदी नारे!—तूफान—आँधी प्रलय ये सब मिलकर भी इतना कोलाहल न कर पाते!

आसमान की छाती फट जायगी ! दिशाओं के कान बहरे हो जायेंगे !

......मैं चुपचाप एक कोने में खड़ा अपने मन को तय्यार कर रहा था कि यदि अभी द्वार खुल जावे और वे नृशंस अत्याचारी यहां भी निहत्थों पर लाठी-चार्ज करते हुए आवें, तो सबसे पहला व्यक्ति मैं होऊंगा जो उनके प्रहारों का सर्वप्रथम शिकार बनेगा !

किन्तु शहीद होने का वह अवसर अन्त तक नहीं आया !

पूर्णमेवावशिष्यते

—६ महीने का एक लम्बा डैश—

इस ६ महीने के अन्दर क्या से क्या होगया। जो प्रारम्भ में एक छोटी-सी चिनगारी थी वह इतने दिनों में भयानक अग्निकाण्ड बन गई। हिमालय पर्वत से हिन्द महासागर तक चारों ओर एक ही नाद था— "आर्यत्व संकट में है, उसे बचाओ।" अनादि काल से शान्त भागीरथी की शान्त तरंगें चञ्चल हो उठीं और जब तक वे बंगाल की खाड़ी में जाकर विलीन न होगई तबतक प्रत्येक को सन्देश सुनाती रहीं— 'जिस संस्कृति को मन्त्र द्रष्टा ऋषियों ने मेरे तट पर ध्यानावस्थित होकर जन्म दिया था, आज वह खतरे में है। उसे बचाओ'—सुनने वालों ने सुना। जिस जिसके कान में यह आवाज़ पड़ती गई उस उसने कृष्ण-मन्दिर को अपना घर बनालिया।... अष्टम सर्वाधिकारी श्री बैरिस्टर विनायकराव विद्यालंकार जब अपनी चतुरंगिणी सेना सजा कर विजय-यात्रा के लिये चले तो दिग्गज हिल उठे। यह देखो, बढ़ी जा रही है सेना! ज़रा सेना के उस देदीप्यमान हथियार को तो देखो—कैसा चमकीला—कितना तेज़—और कभी कुण्ठित

न होने वाला। मगर क्या मजाल यदि एक बूंद भी शत्रु का रक्त धरती पर गिरे! अरे! यह अहिंसा का हथियार ही ऐसा है। इसकी चमक से शत्रु-सेना स्वयं परास्त हो जाती है। और ऐसे वह लगातार बढ़ती जा रही है— चारों दिशाओं से नई नई कुमुक आकर इसमें मिलती जाती है—

किन्तु नियन्त्रण भी तो देखो इसका! सेनापति ने कहा—"हॉल्ट!" और वह सारी की सारी सेना वहीं की वहीं खड़ी होगई—ऊपर का पैर ऊपर और नीचे का नीचे। जब तक सेनापति का अगला आदेश नहीं आयेगा तबतक यह सेना बन्दूकों की छाया में यों ही खड़ी रहेगी! × × ×

नागपुर में सार्वदेशिक सभा की मीटिंग हुई। जिनके कन्धों पर उत्तरदायित्व का भार था उन सब महानुभावों ने परिस्थितियां अनुकूल समझ कर निर्णय किया कि भाग्य-नगर का आर्य-सत्याग्रह स्थगित किया जाता है।

८ अगस्त १६३६— जिस दिन सार्वदेशिक सभा ने उपरोक्त निर्णय किया था।

नास्तिकों की बात हम नहीं कहते सच्चे आस्तिक लोग तो यह मानते हैं कि सर्वशक्तिमान् परमात्मा प्रत्येक घटना का पहले ही निश्चय करके रखता है और फिर वह

घटना उससे अन्यथा हो ही नहीं सकती। इसी प्रकार लेखक का भी विश्वास है कि उस घट-घट व्यापी करुणा-कर ने यह सौभाग्य गुरुकुल कांगड़ी को ही देना था कि आर्य-सत्याग्रह का प्रारम्भ गुरुकुल के विद्यार्थी करेंगे—इस पवित्र यज्ञ में सबसे प्रथम आहुति निष्कीट, शुष्क और शास्त्र-सम्मत समिधाओं की ही पड़ेगी। अन्त में पूर्णाहुति भी गुरुकुल का स्नातक ही देगा (श्री बैरिस्टर विनायकराव विद्यालंकार गुरुकुल के ही सुयोग्य स्नातक थे)। और ऊपर से यह आश्चर्य तो देखो—कि जिस दिन वह प्रथम आहुति गिरफ्तार हुई उस दिन आर्य-सत्याग्रह का श्रीगणेश था, और जिस दिन वह प्रथम आहुति अपनी ६ मास की कारावास की अवधि समाप्त करके बाहर निकली, उस दिन आर्यसत्याग्रह की इति-श्री थी। नहीं तो यह कैसे होता कि उधर तो ८ अगस्त को सार्वदेशिक सभा सत्याग्रह को स्थगित करने का निर्णय कर रही होती, और इधर हम उसी ८ अगस्त को अपनी सजा समाप्त करके जेल के दरवाजों से बाहर निकल रहे होते!

× × ×

किन्तु उपरोक्त डैश से पहले एक छोटा-सा सेमीकोलन और लगाने दीजिये—

जब सभी साथी अलग अलग होगये तब ऐसी अवस्था आगई कि उस समय निज़ाम राज्य की शायद ही कोई जेल बची हो जिसमें गुरुकुल का कोई न कोई विद्यार्थी उपस्थित न हो। लेखक तो यदि थोड़ा-बहुत कुछ कह सकता है तो केवल हैदराबाद या गुलबर्गा जेल के विषय में ही कह सकता है, किन्तु जिनको आत्म-सम्मान और अत्याचार-विरोधी भावों के कारण अधिकारियों ने एक जगह स्थिर नहीं रहने दिया उन अनेक जेलों का पानी पीने वाले अपने साथियों के विषय में, लेखक नहीं, उन जेलों की दीवारें स्वयं कहेंगी। यदि आज भी कोई दर्शक निज़ाम राज्य की किसी जेल का अतिथि बनकर जावे और वहां के पुराने कैदियों से इस विषय में बात करे तो वे बतायेंगे कि किस प्रकार सबसे पहिले गुरुकुल के विद्यार्थियों ने वहां मार सह कर और कष्ट सह सह कर अन्य सत्याग्रहियों के लिये सुविधायें प्रदान करवाईं थीं।

कहीं विद्यासागर को डण्डों से मार-मार कर हाथ पांव से बेकार कर दिया जाता है, कहीं उदयवीर को बाल पकड़ कर घसीटा जाता है, कहीं धीरेन्द्र को भूखों मारा जाता है, कहीं विद्यारत्न को क़त्ल करने की धमकी दी जाती है, कहीं इन्द्रसेन को टिकटकी पर चढ़ाया जाता है......और इस तरह यह लम्बी लिस्ट लगातार बढ़ती ही चली जाती है!

किन्तु—
किन्तु नहीं भूला जा सकता वह दृश्य— जबकि सुपरिटेंडेंट साहब भाई रामनाथ को एक दिन डाँटते हुए कहते हैं—"तुम! तुम हैदराबाद रियासत के कानूनों को क्या बदलोगे! तुम तो अंगुलि काटकर शहीद बनने चले हो। तुम्हारे इस सत्याग्रह से कुछ नहीं हो सकता।"

तब भाई रामनाथ ने उत्तर दिया था—"यदि सच्चे शहीद बनने का मौका आयेगा तो वह भी बनकर दिखा देंगे, किन्तु अंगुलि काट कर शहीद बनने वालों में यदि आप भी शामिल होना चाहते हैं—तो यह लीजिये, मेरी अंगुलि काट कर उसका खून आप अपनी अंगुलि पर पर लगा लीजिये!"

और तब इस गुस्ताखी के फल-स्वरूप उसे तीन-चार मुसलमान वार्डरों के सिपुर्द करके 'लक्कड़ वार्ड' में भेज दिया। वहां उन क्रूर वार्डरों ने डण्डों से और जूतों से उसे इतना पीटा था कि वह लोहूलुहान होकर बेहोश हो गया था ...... फिर उससे माफी मँगवाने के लिये बड़े बड़े प्रयत्न किये गये—जबर्दस्ती मुख में मांस डाला गया, महीनों उससे पेशाब और टट्टी उठवाई गई, और उसकी पीठ पर कितने डण्डों के निशान थे! किन्तु वाह वीर! तूने सब कुछ हँसते हुए सहा—पर तेरी वाणी से 'क्षमा' शब्द न निकल सका!

कोई संगारेड्डी से छूट कर आया, कोई नलगुण्डा से, कोई करीम नगर से, कोई वारंगल से, कोई उस्मानाबाद से, कोई निजामाबाद से, कोई औरंगाबाद से, कोई गुलबर्गा से और कोई चञ्चलगुडा से। और जब हम सब के सब बम्बई में पहली बार मिले—ओह! कितना भव्य दृश्य था! पता नहीं कितनी त्रिवेणियों के संगम की भव्यता उस एक छोटी-सी टुकड़ी में अनुस्यूत हो उठी थी!

किन्तु पाठक, मुझे क्षमा करना। मुझसे थोड़ी-सी गलती हो गई है। मैंने लिखा है—"पूर्णमेवावशिष्यते।" भला यह भी कहीं सम्भव है कि अग्नि में पड़ी आहुति भस्म-निश्शेष बनकर भी पूर्णावशिष्ट रहे! किन्तु, सचमुच हम पूरे पन्द्रह के पन्द्रह ही मुक्त होकर आये थे—'पूर्णावशिष्ट'—पर दुर्भाग्य का उपहास तो देखो कि फिर भी 'पूर्णावशिष्ट' नहीं रहने पाये!

उस रामनाथ ने एक दिन सुपरिंटेंडेण्ट साहब को जो कुछ कहा था उसे सत्य कर दिखाया—अंगुलि कटा कर शहीद होना उसने नहीं जाना था!

उस जेल के साथ ही वह इस शरीर की जेल से भी मुक्त हो गया! काश! कि मृत्यु के मुख से छीनकर उसे एक बार कुल-माता की गोद में बिठा सकता!

× × ×

जिस दिन इस यात्रा के लिये हम प्रयाण करने चले उसी दिन सवेरे एक छोटे-से बच्चे ने आकर पूछा था— "भाई जी ! आप कहां जा रहे हैं ?"

"हैदराबाद।"

"वहां क्या करेंगे ?"

उसको समझाने के लिये सरल-भाव से मैंने कहा— "वहां हम सन्ध्या-हवन करेंगे।"

उसका भोलापन फिर पूछ बैठा—"क्यों, यहां क्या आपको सन्ध्या-हवन नहीं करने देते ?"

"नहीं, यहां तो करने देते हैं, किन्तु वहां नहीं करने देते। वहां का राजा मुसलमान है और हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार करता है।"

"अच्छा भाई जी ! मुसलमान तो गाय को मारकर खाते हैं, वे तो बड़े निर्दयी होते हैं। आपको भी खूब मारेंगे और खाने को रोटी नहीं देंगे ?"

"नहीं, रोटी तो हमें मिल ही जावेगी। अलबत्ता मारेंगे सो देखा जावेगा !"

"तो फिर रोटी कैसे मिल जावेगी, क्या यहां से बांधकर ले जायेंगे ?"

मुझे बच्चे की बात पर हँसी आगई। उसकी इस बात को किसी तरह टाला, तो उसने चलते चलते कहा—

"अच्छा भाई जी ! यदि आप मर जायें तो हमें भी सूचना देना। हम भी रोयेंगे !"

× × ×

उस बच्चे के सामने जाते हुए मुझे डर लगता है !

उसे कैसे समझाऊँ कि मैं तो हैदराबाद से जीवित ही वापिस लौट आया हूं—किन्तु अपने एक साथी को अपने साथ नहीं ला पाया !

उस बच्चे की आत्मा चिल्लायेगी—"ओ ! विश्वासघाती !"

विश्वात्मा पुकारेगी—"ओ ! विश्वासघाती !!"

और स्वयं मेरी अन्तरात्मा मुझे धिक्कारेगी—"ओ ! विश्वासघाती !!!"

बन्दी !

[श्री 'विराज']

संगी ! सुन आह्वान हुआ है !

बज उठे शंख, सज गई सैन्य,
मिट जाय देश का दुःख दैन्य,
यौवन के मादक गायन से मेरा भी विचलित ध्यान हुआ है !
संगी ! सुन आह्वान हुआ है ।

ताल ताल पर हृदय उछलते,
लड़ पड़ने को हाथ मचलते,
सेना के सुनकर समर वाद्य अब मरना भी आसान हुआ है !
संगी ! सुन आह्वान हुआ है !

तलवारों की सुखद ताल पर,
गोली के वर्षण कराल पर,
सौ सौ कण्ठों से चण्डी के भीषण रण का गान हुआ है !
संगी ! सुन आह्वान हुआ है !

कितना महान् कितना कराल
जीने मरने का अन्तराल !

हम छोड़ चुके जब अपनापन
आजादी के मतवाले बन,
तब ख़त्म हुई जीवन--सीमा
तब लगा दीखने घोर मरण
तब लगी दीखने चिता--ज्वाल,
जीने मरने का अन्तराल !

तब प्राप्त हुई हमको कारा
जीवन ने जिसको धिक्कारा
औ' मृत्यु--देव ने भी जिसको
अभिशाप समझ कर दुत्कारा,
नर की कृति यह ! नर विनत भाल !
जीने मरने का अन्तराल !

———

संगी ! घोर काराद्वार !

देख कर उत्साह घटता,
स्वयं पीछे पैर हटता,
किन्तु घुसना ही पड़ेगा आज हो लाचार !
संगी ! घोर काराद्वार !

बस जरा पहुंचे कि अन्दर
और इन खाली सिरों पर
आयंगे बन्दीत्व के लाखों अनेकों भार !
संगी ! घोर काराद्वार !

नरक में या स्वर्ग में इस
निज स्वयं में ही स्वयं पिस
हम घुसेंगे और यह रह जायगा संसार !
संगी घोर काराद्वार !

सुन संगी, बन्दी का गाना !

बेचारा चुप चाप गा रहा
गा भी वह इसलिए पा रहा
क्योंकि अभी तक नहीं किसी भी क्रूर सिपाही ने है जाना!
सुन संगी, बन्दी का गाना !

सुनकर खुद आंसू आ जाते
रोके जरा न रुकने पाते
मेरा डर भी उसके दुःख में चाह रहा है हिस्सा पाना !
सुन संगी बन्दी का गाना !

कभी कभी दो पद गा लेता ;
यह अपनी पीड़ा से देता—
निज को और विधाता को भी कितना हृदय विदारक ताना!
सुन संगी, बन्दी का गाना !

हो चली है शाम !

आ गई छाया यहां तक
चार बज जाते जहां तक,
बस ज़रा सा काम कर लें और फिर विश्राम !
हो चली है शाम !

घूमता सा लग रहा सिर
औ' अँधेरा सा रहा घिर,
हूँ सुबह से कर न पाया दो मिनट आराम !
हो चली है शाम !

हो बुरा इन वार्डरों का
औ' सिपाही जेलरों का,
जान से प्यारा हमारी है इन्हें बस काम !
हो चली है शाम !

सुन सान कारागार !!!

खुल गई है नींद मेरी,
रात है काली अंधेरी,
शब्द कुछ होता नहीं आतंक यह साकार।
सुन सान कारागार !!!

वह सुनो, हैं बज गए दो,
यह गुंजाता-सा तिमिर को
तीव्र स्वर में कह उठा—"सब ठीक" पहरेदार।
सुन सान कारागार !!!

नींद तो आती नहीं है
और साथी भी नहीं है
याद उन की कर रही है विकल बारम्बार।
सुन सान कारागार !!!

ज़रा जो मुँद जाते दृग-कोश
बदल जाता सारा संसार !
वहीं खिंच जाता घर का चित्र,
वही भाई-बहनों का प्यार,
वही सरिता, वे ही उद्यान,
वही जीवन दुख-सुख के गान,
वही सब प्रिय मित्रों के साथ,
स्नेह के मृदु आदान प्रदान,
वही आग्रह रहने का साथ,
वही माता का सरस दुलार,
न फिर से रण जाने की बात
और मेरा हलका स्वीकार,

अचानक खुल जाते दृग-द्वार ।
वही फिर आगे कारागार !
भयानक भीषण कारागार !!!

कुछ बिना ष कुछ बिना बात,
होता था भीषण कशाघात !
झर झर झरती थी रक्तधार,
आगे करता करता प्रहार
जल्लाद स्वयं भी कांप उठा
निज उर की निर्दयता निहार !
जब खत्म हुआ यह प्रेत नृत्य
उन नीचों का अति घृणित कृत्य,
तब मरण-प्राय उस बन्दी के
यों प्राण उठे फिर से पुकार—

"जल्लाद ! अभी से गए हार?"

———

टूट कर है गिर गई प्राचीर,
खुल गए स्वयमेव सारे द्वार,
भग गए सब दूर पहरेदार !
हो गया सौ टूक कारागार !

किन्तु बाहर शान्ति का शुभ प्रात
मिट चला है रात्रि हाहाकार ;
मिट चला है घोर अत्याचार !
हो गया सौ टूक कारागार !

आज दुख से हीन सुखमय देख !
विश्व मानों शान्त पारावार ;
दूर पग के लौह-बन्धन भार !
हो गया सौ टूक कारागार !
हो गए सब दूर अत्याचार !

समाप्त